भविष्य के भारत की बुनियाद

सकारात्मक राष्ट्रवाद

गोपाल राय

b a

बुक ऐज़ पब्लिकेशन
I-152, द्वितीय मंजिल गली नं. 11
ललिता पार्क, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092
Ph: 98111-40390
E-mail: bookage_nks@yahoo.com

द्वितीय संस्करण 2021

© गोपाल राय

आई.एस.बी.एन. 978-81-950791-6-2

भारत में मुद्रित

बुक ऐज़ पब्लिकेशन, I-152, द्वितीय मंजिल गली नं. 11, ललिता पार्क, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092 द्वारा प्रकाशित। एम.एस. कम्प्यूटर, पटपड़गंज दिल्ली-110092

दूसरे संशोधित संस्करण की भूमिका

मेरे लिए यह बेहद खुशी की बात है कि इतने कम समय में 'सकारात्मक राष्ट्रवाद' का दूसरा संशोधित संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसका पूरा श्रेय देश और दुनिया के अलग-अलग कोनों में रह रहे उन तमाम भारतीय पाठकों को जाता है जिन्होंने न सिर्फ इस किताब को पढ़ा बल्कि अलग-अलग समय में इस पर चर्चा भी की। इन चर्चाओं से जो सुझाव निकलकर सामने आये उन्हें इस संस्करण में शामिल करने की कोशिश की गई है। इस बात को किताब के पहले संस्करण की भूमिका में भी कहा गया है कि इसमें शामिल लेख, मेरे द्वारा लिखे नहीं बल्कि अलग-अलग समय पर 'देश की बात' के मंच से बोले गए मेरे वक्तव्य हैं। इसलिए किताब में कई जगहों पर उस खास समय की चर्चाओं और परिस्थितियों के सन्दर्भ भी आ गए थे जो एक नए पाठक, जो उन संदर्भों से परिचित नहीं है, के लिए रुकावट पैदा कर रहे थे। इसके अलावा पिछला अध्याय विभाजन मेरे वक्तव्यों के आधार पर होने के कारण एक किताबी अध्याय विभाजन की तरह तारतम्यता लिए हुए नहीं था। कई जगहों पर प्रूफ संबंधी गलतियाँ भी थीं। यही वजह है कि नए संस्करण में संशोधन की जरूरत पड़ी।

इस नए संस्करण में सकारात्मक राष्ट्रवाद के दो अलग-अलग अध्यायों को जोड़कर एक कर दिया गया है। इसी तरह महिलाओं से सम्बंधित दो अध्यायों को एक अध्याय में बदल दिया गया है। जाति, आरक्षण और सामाजिक न्याय से सम्बंधित तीन अलग-अलग अध्यायों को मिलाकर एक अध्याय बना दिया गया है। महात्मा गांधी और शहीद भगत सिंह से सम्बंधित अध्यायों में डॉ. अंबेडकर से सम्बंधित सन्दर्भों को जोड़कर एक नया अध्याय बना दिया गया है। इसके अलावा पर्यावरण और मीडिया से सम्बंधित मेरे दो पुराने वक्तव्यों का लिप्यान्तरण कर इस संस्करण में शामिल कर दिया गया है। इन अध्यायों के अलावा 'मिशन देश की बात' को भी इस संस्करण में शामिल किया गया है।

सकारात्मक राष्ट्रवाद का यह संशोधित संस्करण इसलिए संभव हो पाया क्योंकि प्रथम संस्करण की पांडुलिपि हमारे पास थी जिसे तैयार करने में स्वर्गीय प्रदीप कुमार सिंह जी की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। साथ ही सीमा जोशी, प्रो. गौहर रजा, प्रो. मनोज कुमार सिंह, रितु रानी और उपेन्द्र कुमार का भी अहम योगदान रहा।

किताब के दूसरे संशोधित संस्करण को तैयार करने में 'टीम देश की बात' का सराहनीय योगदान रहा है। मैं इस किताब के प्रकाशक श्री नरेंद्र जी का भी विशेष शुक्रगुजार हूं जिन्होंने बेहद कम समय में इस संस्करण के प्रकाशन की व्यवस्था की।

गोपाल राय

पहले संस्करण की भूमिका

यह पुस्तक आदरणीय गोपाल राय के विचारों का संग्रह है जिसे उन्होंने जगह–जगह भाषण के रूप में बोला है। फरवरी 2018 में उन्होंने 'देश की बात' कार्यक्रम की शुरुआत की, जिसे अब दिल्ली की सभी विधानसभाओं में चलाया जा रहा है। यह मूलतः एक वैचारिक मंच है जिससे जुड़कर हर व्यक्ति विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों पर अपनी राय साझा कर सकता है।

धीरे–धीरे इस मंच की जरूरत को ध्यान में रखते हुए, विशेषकर शिक्षित युवाओं के बीच और शिक्षा संस्थानों में भी इसके बैनर तले वैचारिक मुद्दों पर कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं। पिछले दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय के अधिकतर कॉलेजों में एक साथ 'देश की बात' का कार्यक्रम किया गया जिससे इस मंच को युवाओं के बीच व्यापक स्वीकृति मिली है।

दरअसल, आज जो देश के हालात हैं, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक विकास का जो आलम है, उसमें बहुत जरूरी हो जाता है कि देश के युवा, किसान, मजदूर, महिलायें, पिछड़े तथा समाज के अन्य कमजोर लोग एक साथ मिलकर बात करें। अपनी सभ्यता, संस्कृति और इतिहास के सकारात्मक पहलुओं की पहचान कर उन्हें अपनी जिंदगी में अमल करने की कोशिश करें।

इन्हीं सन्दर्भों में 'देश की बात' ने 'राष्ट्रवाद और देशभक्ति' को नए सिरे से व्यख्यायित किया है। साथ ही अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता भी साफ की है। यह गोपाल राय जी की राजनीतिक सक्रियता और बहस के माध्यम से वैचारिक साफगोई का नतीजा है कि आज उन्होंने 'सकारात्मक राष्ट्रवाद' को राजनीतिक प्रतीक के रूप में गढ़ा है।

सकारात्मक राष्ट्रवाद मूलतः अपनी परंपरा, इतिहास, संस्कृति और राजनीति के उन पहलुओं को लेकर चलने की एक वैचारिक व्यवस्था है जिससे समाज के अंतिम व्यक्ति को भी अपने जीवन जीने का बुनियादी हक मिले, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म अथवा संप्रदाय का हो। इसके लिए जरूरी है कि हमें अपनी विरासत के सकारात्मक पहलुओं का ज्ञान हो। तभी हम बेहतर भविष्य के लिए संघर्ष कर सकते हैं।

डॉ. प्रदीप कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
डॉ. भीमराव अंबेडकर महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अनुक्रम

दूसरे संशोधित संस्करण की भूमिका ..... (*v*)

पहले संस्करण की भूमिका ..... (*vi*)

सकारात्मक राष्ट्रवाद 1

आज के दौर की विचारधारा 33

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और बदलाव की जरूरत 46

देश की मजबूती के लिए धर्मनिरपेक्षता की जरूरत 62

जाति, आरक्षण और सामाजिक न्याय 67

बेरोजगारी की समस्या का भारतीय अर्थव्यवस्था में समाधान 77

प्राकृतिक संसाधनों का विनाश और पर्यावरण संरक्षण 96

वैज्ञानिक चेतना एवं भारतीय समाज 100

संविधान और उसके मूल्यों की रक्षा 108

लोकतंत्र, मीडिया और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता 118

महात्मा गांधी, डॉ. अंबेडकर और शहीद भगत सिंह 127

राष्ट्र-निर्माण में युवाओं की भागीदारी 134

मिशन: देश की बात 143

अध्याय
1

सकारात्मक राष्ट्रवाद

1. 'देश' का मतलब

सकारात्मक राष्ट्रवाद को गहराई से समझने के लिए हमें सबसे पहले 'देश' के मतलब को समझना होगा। 'देश' एक ऐसा शब्द है जो कानों में सुनते हुए अधिकतम लोगों को बहुत अच्छा लगता है। देश शब्द जब कानों के माध्यम से हमारे मन में पहुँचता है तो कुछ गुदगुदाहट पैदा होती है। घोर स्वार्थ में जिंदगी जीने वाले लोगों को भी ऐसा लगता है कि उन्हें भी अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर देश के लिए कुछ करना चाहिए।

अगर देश से देशवासियों को निकाल दिया जाए तो क्या उसके बाद देश बचता है? आप अपने मन से पूछिए कि इस देश के अंदर सुदूर मणिपुर में रहने वाले जो भारतीय हैं, क्या वे देशवासी हैं या नहीं? जो आदिवासी हैं, वे इस देश का हिस्सा हैं या नहीं? उनका ये देश है या नहीं है? जो दलित हैं, जिन्होंने अपनी सारी जिंदगी को दूसरों की सेवा में लगा दिया, क्या वे इस देश का हिस्सा नहीं हैं? इस देश में महिलाओं की आधी आबादी है, इस देश में उनका कोई हिस्सा है या नहीं? इस देश के जो लाखों-लाख किसान हैं उनका ये देश है या नहीं? जो श्रमिक दिन-रात मेहनत करके बड़ी-बड़ी इमारतों को बनाते हैं। उनका ये देश है या नहीं?

क्या कुछ चंद लोगों का, जो आज की तारीख में किसी भी तरह से सबल हैं, सक्षम हैं, सिर्फ उनका ही देश है? नहीं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, कच्छ से मणिपुर तक, जो ये विशाल मातृभूमि है इसके किसी भी कोने में, जाति में, धर्म में पैदा हुए बेटे-बेटियाँ भी इस देश के वासी हैं। अगर यह बात हमारे दिमाग में कैद नहीं होगी तो फिर देश के बारे में सोचना, कुछ करना सब व्यर्थ

हो जाएगा। हम पूरी ताकत भी लगा दें इस देश के लिए, लेकिन हो सकता है कि ऊर्जा पैदा होने की जगह एक न एक दिन हिरोशिमा-नागासाकी पैदा हो जाए और आज यह देश जो भी बचा है, वह भी बर्बाद हो जाए।

हम अपने देश को मजबूत करने की बात सोचते हैं, शक्तिशाली और ताकतवर बनाने की बात सोचते हैं, लेकिन आमतौर पर रोजाना ये सब सोचना मुश्किल होता है। दिल्ली देश की राजधानी है, लेकिन दिल्ली में रहने वाले अधिकतम लोगों को यह महसूस करना बहुत मुश्किल होता है कि उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, ओड़िशा, असम आदि का एक किसान दिनभर मेहनत करने के बावजूद कैसे जीता है? वह इस देश के बारे में क्या सोचता होगा? आदिवासी इस देश के बारे में क्या सोचते होंगे? उनका इस देश को लेकर क्या सपना है? महिलाएं पुरुष की हैवानियत का शिकार होती हैं, सिर्फ इसलिए कि वे महिलाएं हैं। वे इस देश के बारे में क्या सोचती हैं? इस देश में अलग-अलग धर्म के लोग रहते हैं। जब अनावश्यक रूप से किसी धर्म को मानने वाले एक व्यक्ति के गलती के आधार पर पूरे धर्म को कलंकित किया जाता है, अपमानित किया जाता है, तो वे लोग इस देश के बारे में क्या सोचते हैं?

अगर आप देश की बात सोचते हैं और इस देश के करोड़ों मजदूरों का चित्र आपके दिमाग में नहीं आता है, दिन-रात मेहनत करने के बावजूद अपनी बेटी की शादी के लिए परेशान किसान नहीं दिखते, अपनी जिंदगी जीने के लिए लड़ रहे आदिवासी अगर आपको नहीं दिखते हैं, सिर्फ जाति के आधार पर अपमानित किए जाने वाले दलित समाज के वे लोग, जिनका कोई गुनाह नहीं है, आपको नहीं दिखते हैं, अगर इन सबका चित्र आपके दिमाग में नहीं आता है तो आप सब कुछ देखते हैं, पर देश नहीं देखते। आपके मानस पटल पर वह देश नहीं दिखता है। देश के बारे में जो भी झूठी-सच्ची आधी-अधूरी कहानियाँ हमारे दिमाग तक बनाकर पहुंचाई गई हैं, बस वे एकांगी तस्वीरें हैं। इससे यह देश आगे बढ़ने वाला नहीं है।

जो बात मैं आपके दिमाग में डालने की कोशिश कर रहा हूँ और चाहता हूँ कि आप उसे सोचें कि कोई भी देश अपने देशवासियों के बगैर कुछ भी नहीं

है। देश सिर्फ जमीन पर खिंची हुई लकीर नहीं है। कोई भी राष्ट्र, उस देश में रहने वाले समग्र देशवासियों के मजबूत हुए बगैर, मजबूत नहीं बन सकता। जब तक देश का बच्चा-बच्चा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक रूप से सक्षम महसूस नहीं करता, तब तक कोई देश अपने-आप को सशक्त नहीं कर सकता। इसलिए मैं आपसे फिर से कहना चाहता हूँ कि आप किसी देश को उसके नक्शे या उसकी भौगोलिक बनावट से नहीं जान सकते। देश को जानने, उसको समझने के लिए आपको विभिन्न क्षेत्रों, वर्गों, धर्मों, सम्प्रदायों और अलग-अलग संस्कृतियों के लोगों को अपने मानस पटल पर रख कर देखना होगा, उनके बारे में सोचना होगा। उनके दु:ख, उनके सुख, उनके सपने, उनकी आकांक्षाओं को महसूस करना होगा, उनमें शामिल होना होगा। इसी साझे सुख-दु:ख, साझे सपने और साझी आकांक्षाओं का नाम देश है।

2. 'राष्ट्रवाद' की उत्पत्ति और उसका विकास

आप इस बात को जानते हैं कि दुनिया के अंदर मानव सभ्यता के विकास में अलग-अलग चरण रहे हैं। मानव सभ्यता को आगे बढ़ाने के लिए अलग-अलग प्रथाओं, अलग-अलग व्यवस्थाओं और अलग-अलग विचारधाराओं का प्रयोग किया गया है। शुरुआत में दुनिया के अंदर एक आदिम व्यवस्था थी। धीरे-धीरे लोगों ने अपनी तरक्की के लिए कृषि यंत्रों का आविष्कार किया। कृषि आधारित व्यवस्था पैदा हुई। कबीले बने। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में आदिम कबीलों का यह तंत्र खड़ा हो गया। कबीलों का यह तंत्र धीरे-धीरे सामंतवादी व्यवस्था में बदल गया। एक समय के बाद इसी सामंतवादी व्यवस्था से राजशाही व्यवस्था का जन्म हुआ। राजशाही व्यवस्था ने अपने-अपने अधिकार क्षेत्र, अपने-अपने राज्य, अपने-अपने साम्राज्य को अपने-अपने तरीके से आगे बढ़ाया। समय-समय पर इस दुनिया में कई राजव्यवस्थाएं कायम होती रहीं। एक देश के अंदर कभी पांच राजाओं का साम्राज्य रहा, कभी दस राजाओं का साम्राज्य रहा, कभी सौ राजाओं का साम्राज्य रहा। देश नहीं बदला लेकिन समाज को संचालित करने का, आगे बढ़ाने का तंत्र और विचारधारा बदलती रही।

फ्रांस के अंदर राजशाही द्वारा शोषण तथा जनता के प्रति उत्तरदायी न होने के खिलाफ जनता ने आवाज उठाई। यहां राजशाही के खिलाफ, राजतंत्र के खिलाफ एक विचारधारा पैदा हुई। उसमें एक राष्ट्र की विचारधारा पैदा हुई कि पूरा देश एक है। उस देश में रहने वाले लोगों में स्वतंत्रता होनी चाहिए, समानता होनी चाहिए और बंधुत्व की भावना होनी चाहिए। ये जो राजा और प्रजा के बीच का भेद है, यह खत्म होना चाहिए। यहां राजतंत्र से आगे बढ़कर राष्ट्रतंत्र की एक सोच पैदा हुई। लेकिन इस सोच ने आगे बढ़ते हुए कई स्वरूपों को ग्रहण किया। उसी में से एक स्वरूप 'राष्ट्रवाद' की विचारधारा के रूप में हमारे सामने आया।

एक विचारधारा के रूप में 'राष्ट्रवाद' की उत्पत्ति आधुनिक यूरोप में हुई। जिसके विकास में पुनर्जागरण, ज्ञानोदय, औद्योगिक क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति और उपनिवेशवाद के क्रमिक विकास से पैदा हुई परिस्थितियों ने अहम भूमिका अदा की। 19वीं और 20वीं शताब्दी में यह विचारधारा अपनी बुलंदी पर पहुंच गई और दुनिया के अधिकांश देशों को अपनी जद में ले लिया। दुनिया भर के अलग-अलग समाजशास्त्री, राजनीति विज्ञान शास्त्री और दार्शनिकों ने इस विचारधारा को अपने-अपने अंदाज में परिभाषित करने की कोशिश की है। इन परिभाषाओं से जो एक कॉमन बात निकलकर आती है वो ये कि राष्ट्रवाद अपने राष्ट्र से प्रेम करने और उसे बेहतर बनाने के लिए प्रयासरत रहने वाली एक विचारधारा है। लेकिन इस विचारधारा के नाम पर जो लड़ाईयां, जो राजनीति और जो व्यवस्थाएं बनाई गईं उससे दो विपरीत धाराओं का विकास हुआ। एक धारा थी नकारात्मक राष्ट्रवाद की तो दूसरी सकारात्मक राष्ट्रवाद की।

3. नकारात्मक राष्ट्रवाद बनाम सकारात्मक राष्ट्रवाद

अगर कोई आपसे पूछता है कि नकारात्मक राष्ट्रवाद क्या है और सकारात्मक राष्ट्रवाद क्या है? इन दोनों में क्या अंतर है? तो इसका जवाब है कि दोनों विचारधाराएँ देश को आगे बढ़ाने का दावा करती हैं। दोनों देश में रहने वाले सभी देशवासियों की समस्याओं के समाधान का रास्ता राष्ट्रवाद बताती हैं लेकिन दोनों के प्रयोग का परिणाम अलग होता है। नकारात्मक राष्ट्रवाद की बुनियाद नफरत होती है और सकारात्मक राष्ट्रवाद की बुनियाद मोहब्बत होती है। जो नफरत की

बुनियाद पर अपनी ताकत को संग्रहित करने की बात करता है, वह नकारात्मक राष्ट्रवाद है और जो मोहब्बत के आधार पर लोगों को जोड़कर अपनी ताकत को संग्रहित करने की बात करता है वह सकारात्मक राष्ट्रवाद है।

नकारात्मक राष्ट्रवाद को लेकर दुनिया के अंदर दो बहुत गहरे प्रयोग हुए हैं- पहला प्रयोग जर्मनी में हुआ जहाँ हिटलर ने यहूदियों के खिलाफ नफरत पैदा की। उसने ये नारा दिया कि यहूदी खत्म हो जाएंगे तो जर्मनी की सारी समस्याएं खत्म हो जाएगी और दुनिया का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र जर्मनी बन जायेगा। हम सब जानते हैं कि परिणाम क्या हुआ। नफरत की बुनियाद पर जो राष्ट्र बनाने की परिकल्पना का प्रयोग हुआ, उसके तीन परिणाम निकले। उसका पहला परिणाम निकला कि लाखों बेगुनाह, निर्दोष लोगों का कत्ल-ए-आम किया गया। दूसरा, हिटलर को आत्महत्या करनी पड़ी। तीसरा, जर्मनी दो टुकड़ों में विभाजित हो गया, पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी।

दूसरा प्रयोग धर्म के आधार पर निर्मित पाकिस्तान में हुआ। मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान बनने से मुसलमानों के सभी बच्चों के पढ़ने की गारंटी नहीं हुई। धर्म के आधार पर राष्ट्र बनने से सभी लोगों की शिक्षा और रोजगार की गारंटी नहीं हुई। धर्म के आधार पर राष्ट्र बनने से सभी लोगों को समानता की गारंटी नहीं हुई। धर्म के आधार पर राष्ट्र बनने से सभी महिलाओं-पुरुषों के बीच बराबरी और सम्मान की गारंटी नहीं हुई। वहाँ इबादतगाहों तक पर बम गिराए जाते हैं। लोग डर के साये में जीने के लिए मजबूर होते हैं। बेटे-बेटियों को पढ़ने से वंचित कर दिया जाता है। लोग इलाज के लिए तरसते हैं। उनके नायकों की हत्या होती है और अन्ततः जर्मनी की तरह पाकिस्तान का भी बँटवारा होता है और एक नया देश बांग्लादेश बनता है।

ये दोनों प्रयोग हमें बताते हैं कि नकारात्मक राष्ट्रवाद के तीन मुख्य परिणाम निकलते हैं। पहला - निर्दोष लोगों का कत्ल-ए-आम, दूसरा - उसके नायकों का आत्महत्या और हत्या का रास्ता अपनाना और तीसरा - देश का विखंडन।

दुनिया में सकारात्मक राष्ट्रवाद को लेकर भी कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग हुए। चाहे वह सोवियत रूस का निर्माण हो, जापान के विकास की कहानी हो या फिर

क्यूबा जैसे छोटे देश का आत्मनिर्भर बनना, इन सभी देशों को बेहतर बनाने के लिए जो प्रयोग किये गए वह सकारात्मक राष्ट्रवाद की वैचारिकी और उसके जज्बे से जुड़े हैं।

अगर आपको याद हो, यूरोप के कई देशों को हराने वाले हिटलर को रूस से हारना पड़ा था। विश्वयुद्ध के समय हिटलर को रूस के लोगों ने हरा दिया। जानते हैं क्यों? हिटलर अपनी सेना के दम पर लड़ रहा था और रूस अपनी जनता के दम पर लड़ रहा था। रूस में जिस- जिस कोने में जर्मनी की सेना गई, वहाँ हर जगह फौज नहीं थी। लेकिन वहाँ के हर बच्चे को अपने देश से मोहब्बत थी। हर गाँव, हर गली, हर मोहल्ले के लोगों ने अपने देश की रक्षा के लिए अपनी जान को न्योछावर कर दिया क्योंकि उनको लगता था कि यह जो देश है, वह हमारे लिए कुछ करता है। अगर हम अपने देश को आगे बढ़ाना चाहते हैं तो मोहब्बत के आधार पर आगे बढ़ेगा। मोहब्बत का यह आधार ही तो सकारात्मक राष्ट्रवाद है।

4. भारत में नकारात्मक और सकारात्मक राष्ट्रवाद का विकास-क्रम

भारत में आजादी की लड़ाई के दौरान राष्ट्रवादी विचारधारा का उदय हुआ। भारत के अंदर आगे चलकर नकारात्मक और सकारात्मक दोनों तरह के राष्ट्रवाद का विकास देखने को मिलता है। हम सब जानते हैं कि आजादी की लड़ाई के दौरान, लॉर्ड क्लाइव से प्लासी के मैदान में, वह पहला व्यक्ति जिसने मोर्चा लिया, वह हिंदू नहीं मुसलमान था। 24 साल का नौजवान सिराजुद्दौला। सिराजुद्दौला का नाम तो आप जानते ही होंगे। वह नौजवान जिसने लॉर्ड क्लाइव से समझौता करने के लिए मना कर दिया था। मीर जाफर वह सेनापति था जिसके पास बहुत अनुभव था। लेकिन वह लार्ड क्लाइव के सामने बिक गया। सिराजुद्दौला शहीद हो गया, पर समझौता नहीं किया। शायद वह देश की लड़ाई नहीं थी। लेकिन ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज के खिलाफ लड़ाई थी।

1857 का स्वतंत्रता संग्राम जिसको आजादी की पहली लड़ाई के रूप में जानते हैं, इससे पहले इस देश के अंदर छोटी-छोटी जगहों पर किसानों-आदिवासियों

ने बहुत सारी लड़ाइयाँ लड़ीं। इस लड़ाई को आप देश की लड़ाई मानें या न मानें, एक अलग प्रश्न है। क्योंकि उस समय देश के अंदर कोई केन्द्रीय सत्ता या राष्ट्र सत्ता नहीं थी। अलग-अलग नवाब थे। अलग-अलग राजा थे। अंग्रेज कोशिश कर रहे थे कि एक-एक करके सारी रियासतों को, राजाओं को, नवाबों को अपनी तरफ कर लिया जाए। 1857 आते-आते लगभग पूरा देश उनके कब्जे में आ चुका था। भारत की जो रियासत बची थी उसको भी अंततोगत्वा उन्होंने अपने हाथों में ले लिया। आप देखिएगा कि भारत के अंदर जिस तरह लगातार ईस्ट इंडिया कंपनी का कब्जा बढ़ता जा रहा था। उसी तरह सभी लोगों को एक देश-प्रेम, आप चाहें उसे राष्ट्रवाद कहें या सकारात्मक सोच कहें, द्वारा एक मुट्ठी में बंधने की प्रक्रिया आगे बढ़ रही थी।

1857 की जंग-ए-आजादी में देश के सभी हिस्सों से लोग इकट्ठा हुए और भारत में एक सकारात्मक राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। यूरोप में यह सोच थी कि एक धर्म, एक जाति, एक भाषा, एक क्षेत्र के लोग ही राष्ट्रवाद के जन्मदाता हो सकते हैं। भारत के प्रयोग ने 1857 में इसके उलट एक नींव रखी कि अलग-अलग धर्म के लोग, अलग-अलग जाति के लोग, अलग-अलग भाषा के लोग, अलग-अलग क्षेत्र के लोग अपने देश के लिए एक साथ इकट्ठा हो सकते हैं और देश को आगे बढ़ाने का रास्ता बना सकते हैं। यह जर्मनी के नफरत के राष्ट्रवाद के विपरीत और उसके मुकाबले में एक मोहब्बत का राष्ट्रवाद था।

1857 की लड़ाई में जो सकारात्मक राष्ट्रवाद है, उसकी ताकत को आप समझने की कोशिश करेंगे तो पाएंगे कि सकारात्मक राष्ट्रवाद जब पैदा होता है तो बहादुरशाह जफर और नाना साहब को साथ-साथ सब कुछ न्योछावर करने की प्रेरणा देता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की विचारधारा जब आगे बढ़ती है तो झाँसी की रानी और बेगम हजरत महल को भी साथ-साथ अपनी कुर्बानी देने के लिए प्रेरणा देती है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की भावना जब आगे बढ़ती है तो देश के लिए अजीमुल्ला खान और तात्या टोपे को साथ-साथ अपनी जान न्योछावर करने की प्रेरणा देती है। ये सकारात्मक राष्ट्रवाद है जो सबको देश के प्रति समर्पण और मोहब्बत की भावना को जगाने की प्रेरणा देता है, जो सबको साथ लेकर आगे बढ़ता है।

उस दौर में एक जुलूस निकलता था। उसमें तीन नारे लगते थे – 'फिरंगियों भारत छोड़ो', 'अल्लाहू अकबर', 'हर-हर महादेव'। सकारात्मक राष्ट्रवाद के इस जज्बे का ही परिणाम था कि लगभग सौ साल (1757 से 1857) के ईस्ट इंडिया कंपनी राज को हमारे पुरखों ने उखाड़ फेंका।

आमतौर पर हम जानते हैं कि 1947 में भारत को आजादी मिली। लेकिन इस देश को पहली बार 14 मई, 1857 को अंग्रेजों के राज से मुक्त करा लिया गया। 14 मई, 1857 से लेकर 21 सितंबर, 1857 तक लाल किले में बहादुर शाह जफर के नेतृत्व में काउंसिल बनी थी। इस काउंसिल ने मई 1857 से लेकर सितंबर 1857 तक पांच महीने तक सरकार को चलाया, उसके बाद दोबारा अंग्रेजों ने देश के गद्दारों की मदद से हमला किया तथा लाल किले पर कब्जा कर लिया।

मैं कहता हूँ आप कभी पुरानी दिल्ली जाकर देखिये। दिल्ली के अंदर दिल्ली गेट से आगे एक खूनी दरवाजा है। नाम तो सुना ही होगा? खूनी दरवाजा वह जगह है जब 14 मई को भारत अंग्रेजी राज से मुक्त करा लिया गया। उसके बाद सितम्बर में जब अंग्रेजों ने दुबारा हमला किया। उस समय बहादुर शाह जफर हुमायूं के मकबरे में थे, उनके बेटे और दो पोते साथ थे। बहादुर शाह जफर पहले गिरफ्तार हुए। उनको लाल किले में कैद किया गया। उस समय अंग्रेजों का सेनापति हडसन था। हडसन ने उनके बेटे और दोनों पोतों को गिरफ्तार किया और उसी खूनी दरवाजे पर लाकर उनका सर कलम कर दिया। अंग्रेजों ने बेटे और पोतों का सिर थाल में सजाकर बहादुरशाह जफर के सामने रखा और कहा कि – 'बहादुर शाह जफर ये तेरी देशभक्ति का इनाम है'। बहादुर शाह जफर ने कहा था कि 'देशभक्ति का यही इनाम है तो ये हमें कबूल है। देश के लिए हम ये भी कुर्बानी देने के लिए तैयार हैं'। उनकी कुर्बानी के दम पर आज ये देश आजाद है। उसके बाद 1857 में बहुत बड़ा दमन हुआ।

1857 में ईस्ट इंडिया कंपनी का राज तो खत्म हो गया लेकिन भारत में सीधे विक्टोरिया का राज कायम हुआ जिसमें भारत की लूट जारी रही। जिससे धीरे-धीरे विद्रोह की भावना दोबारा जाग्रत होने लगी थी। लोग जगह-जगह आवाज उठाने लगे थे। अंग्रेजों को यह समझ में आने लगा था कि जब तक

हिन्दू-मुसलमान अलग-अलग नहीं होंगे भारत पर लम्बे समय तक राज करना मुश्किल होगा इसीलिए उन्होंने भारत के अन्दर हिन्दू और मुसलमान को अलग-अलग करने की रणनीति बनाई। उन्होंने यूरोपीय राष्ट्रवाद की विचारधारा को हमारे लोगों के बीच में प्रयोग करना शुरू किया। जिसका पहला प्रयोग 1905 में बंगाल में हुआ। उन्होंने बंगाल को दो हिस्सों में बांटा - एक हिन्दू बंगाल और दूसरा मुस्लिम बंगाल।

अंग्रेजों ने नकारात्मक राष्ट्रवाद की विचाधारा को बोने की कोशिश इसलिए की ताकि भारत की एकता विखंडित हो और उनका शासन आगे बढ़ सके। उनकी शोषण और गुलामी की व्यवस्था आगे बढ़ सके। दूसरा निष्कर्ष हम देखते हैं कि नकारात्मक राष्ट्रवाद जनता को दो हिस्सों में बाँट कर राज करने और शोषण-गुलामी की व्यवस्था को बनाए रखने का भी एक हथियार है। पूरा भारत बंगाल विभाजन के खिलाफ खड़ा होता है। आमतौर पर हम जानते हैं कि उस समय इंटरनेट नहीं था, सोशल मीडिया नहीं था, अखबार भी इतने नहीं थे, टेलीविजन चैनल नहीं थे। उस समय आने-जाने के साधन इतने नहीं थे। लेकिन फिर भी एक सोच थी। तभी पूरा देश विभाजन के खिलाफ खड़ा होता है। बंगाल का विभाजन नकारात्मक राष्ट्रवाद की सोच को विकसित करने के लिए होता है और उसके खिलाफ एक सकारात्मक राष्ट्रवाद की सोच के साथ लाल-बाल-पाल के नेतृत्व में पूरे देश में आवाज उठती है। वरना पंजाब में पैदा हुए लाला लाजपत राय को बंगाल से क्या लेना-देना था, महाराष्ट्र में पैदा हुए बाल गंगाधर तिलक को बंगाल से क्या लेना-देना था।

पहले के जमाने में इस देश के अंदर उत्तर में मुगलों का शासन चल रहा था, दूसरे हिस्से में मराठों का शासन चल रहा था। मराठों के राज्य में अगर कुछ होता था, तो मुगलों का उससे कुछ लेना-देना नहीं था। अगर कहीं पल्लवों का, हूणों का शासन हो रहा था तो उनके शासन से किसी को कोई लेना-देना नहीं था। लेकिन आजादी के समय एक नई चेतना पैदा हुई। अगर पंजाब पर हमला हुआ तो दर्द बंगाल को भी हुआ और जब बंगाल को बांटा गया तो दर्द महाराष्ट्र को भी हुआ। एक सकारात्मक सोच पैदा हुई। 1905 में भारत के अंदर स्वदेशी और स्वराज का आन्दोलन शुरू हुआ। अंग्रेजों को हार मिली। कलकत्ता उनकी

राजधानी थी। उसे छोड़कर उन्हें भागना पड़ा। दिल्ली में आकर उन्होंने अपना डेरा जमाया।

अंग्रेजों ने यह तय कर लिया था कि जब तक भारत को सोच के आधार पर विभाजित नहीं करेंगे, तब तक भारत में शासन करना असंभव है क्योंकि यहाँ सकारात्मक एकता की सोच पैदा हो चुकी है। अंग्रेजों द्वारा अपने काम को सरल बनाने के लिए आजादी की लड़ाई के खिलाफ दो संगठनों की नींव रखी गई। एक का नाम 'मुस्लिम लीग' रखा गया और दूसरे का नाम 'हिन्दू महासभा'। 'हिंदू महासभा' की विचारधारा आगे चलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में तब्दील हुई। आप देखेंगे कि आजादी की पूरी लड़ाई के दौरान ये नदारद रहे। देश से मोहब्बत करने वाले का एक यह भी पैमाना है कि आजादी की लड़ाई में देश के लिए कुछ कुर्बानी दे। आजादी की पूरी लड़ाई के दौरान आप देखेंगे कि मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा या आर.एस.एस. का कार्यकर्ता देश की आजादी के लिए नारे नहीं लगाता। देश की आजादी के लिए कोई कुर्बानी नहीं देता। ये दोनों संगठन इस देश के अंदर नकारात्मकता को बढ़ावा देते हैं और उसका परिणाम होता है कि 1947 में देश विभाजित हो जाता है।

गौरतलब बात यह है कि 1905 में एक राज्य विभाजित होता है तो उसके खिलाफ पूरा देश खड़ा हो जाता है। क्योंकि देश के अंदर एक सकारात्मक सोच होती है। लेकिन 1947 में देश का विभाजन होता है तो 1905 की तरह पूरे देश से इसके खिलाफ आवाज नहीं उठती। क्योंकि उस समय तक हिन्दू महासभा, आर. एस. एस. और मुस्लिम लीग जैसे संगठनों द्वारा हमारे दिमाग में इतना नफरत का जहर पैदा कर दिया जाता है कि देश को विखंडित करना भी देश के हित की बात लगने लगती है।

इसमें देश के बड़े शहरों से लेकर गाँव के लोग शामिल होते हैं। लेकिन उस लड़ाई में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ खड़ा नहीं होता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक भी मेंबर देश के लिए आजादी की लड़ाई में कुर्बानी नहीं देता है। वह कहता है – हिंदू राष्ट्र चाहिए। पहले मुस्लिम लीग आजादी की लड़ाई के साथ खड़ी थी। लेकिन फिर धीरे-धीरे उसने भी कहना शुरु कर दिया – मुस्लिम राष्ट्र चाहिए। अंग्रेजों ने बी.डी. सावरकर और मोहम्मद अली जिन्ना के माध्यम से भारत

के अन्दर नफरत के बीज को बोना शुरू किया। यह विचारधारा उसी नकारात्मक राष्ट्रवाद की बात करती है जिसके अनुसार राष्ट्र तभी ताकतवर हो सकता है जब एक धर्म, एक भाषा, एक बोली और एक संस्कृति होगी। उनकी माने तो इस तरह की एकांगी अस्मिता से बने राष्ट्र में हर तरह की समस्या का समाधान हो जाएगा। लेकिन मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान और हिन्दू राष्ट्र नेपाल हमारे सामने है, यहाँ की बेरोजगारी और जहालत तो खत्म नहीं हुई।

एक बात और आपसे कहना चाहता हूँ। लोगों को एक भ्रम है कि जर्मनी में केवल यहूदी मारे गए। यहूदियों से ज्यादा जर्मन मारे गए। क्योंकि नकारात्मक राष्ट्रवाद के आधार पर, नफरत के आधार पर जो सत्ता बनती है, उस सत्ता को अल्पसंख्यक से खतरा नहीं होता। अल्पसंख्यक न तो सत्ता बना सकता है और न सत्ता बिगाड़ सकता है। आप एक समय में, नफरत के आधार पर जब बहुसंख्यक को गोलबन्द करके सत्ता ले लेते हैं तो उसके बाद खतरा अल्पसंख्यकों से नहीं रहता। खतरा बहुसंख्यक से हो जाता है। भारत और जर्मनी में यही हुआ। इस का जीता जागता उदाहरण पकिस्तान है जिस का निर्माण ही धर्म के आधार पर हुआ था। आज वहाँ आये दिन आतंकवादी घटनाएँ होती हैं जिसमें सबसे ज्यादा जान-माल का नुकसान वहाँ की बहुसंख्यक आबादी मुसलमानों की ही होता है।

आज आर.एस.एस. और भारतीय जनता पार्टी जिस राष्ट्रवाद के नाम पर देश को भ्रमित कर रहे हैं वह नकारात्मक राष्ट्रवाद का जर्मनी मॉडल है, वे उसी मॉडल को भारत के अंदर पुनर्स्थापित करना चाहते हैं। क्या आर.एस.एस. के लोग नकारात्मक सोच के साथ इस नकारात्मक राष्ट्रवाद को आगे बढ़ाना चाहते हैं? क्या भारत के अंदर वे जर्मनी की तरह लाखों लोगों का कत्ल-ए-आम करना चाहते हैं? क्या उनके पास इस बात का जवाब है कि हिटलर की तरह से उनका नायक आत्महत्या नहीं करेगा? क्या उनके पास इस बात का जवाब है कि नकारात्मक सोच की बुनियाद पर जिस राष्ट्रवाद को वे खड़ा कर रहे हैं, उसके आधार पर जर्मनी की तरह भारत दोबारा विखंडित नहीं होगा?

आज भारत के अंदर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा भारतीय जनता पार्टी द्वारा जो दावे किए जा रहे हैं, जैसे कि हिन्दू राष्ट्र बनाना है। वे ये बात इसलिए नहीं

कर रहे हैं कि उन्हें सच में हिन्दू राष्ट्र बनाना है बल्कि इसलिए कर रहे हैं उन्हें अपनी कुर्सी को बचाना है, सत्ता में बने रहना है। ये इस बात को समझा रहे हैं कि सदियों से यह देश गुलाम रहा है। इसलिए गुलामी की वजह से बेरोजगारी पैदा हुई, गुलामी की वजह से महिलाओं का शोषण हुआ, गुलामी की वजह से देश पिछड़ गया, गुलामी को वजह से लोगों को शिक्षा नहीं मिली। उनका कहना है कि अगर इस देश के अंदर मुसलमान नहीं रहते तो इस देश के अंदर बेरोजगारी नहीं होती। इस देश के अंदर लोग अपने आप पढ़-लिख जाते। इस देश के अंदर सबको बराबरी का हक होता। इस देश के अंदर जातिवाद नहीं होता। लेकिन हम भी जानते हैं और पूरा देश जानता है कि ये झूठ बोल रहे हैं। कुल मिलाकर नकारात्मक राष्ट्रवाद नफरत फैलाकर अपनी सत्ता को हासिल करता है।

जर्मनी में जो हुआ, उसे हम आँख खोलकर देखने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। पाकिस्तान में जो हुआ, हम उसे देखने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। लेकिन इतिहास से जब कोई देश, कोई समाज, कोई कौम नहीं सीखती है तो वह बहुत दु:खदायी होता है। एक बच्चा भी सीख जाता है। वह आग को जब पहली बार देखता है तो नया कौतूहल पैदा होता है। वह समझना चाहता है कि आग क्या है? वह हाथ डालता है, जल जाता है। फिर हाथ डालता है, फिर जल जाता है तो एक छोटे से नन्हे से बच्चे को भी बात समझ में आ जाती है कि आग में हाथ डालोगे तो जल जाओगे। आज हम सबको इस बात को समझने की जरूरत है कि अगर इस देश को नकारात्मक राष्ट्रवाद की आग में झोंका जाएगा तो वह विखंडित होने के रास्ते की तरफ बढ़ेगा। कत्ल-ए-आम के रास्ते की तरफ बढ़ेगा और जो नायक हैं, वे आत्महत्या की तरफ बढ़ेंगे। इसमें से कोई रास्ता तरक्की का नहीं निकलने वाला है। न इतिहास में निकला है, न वर्तमान में निकल सकता है और न भविष्य में इसकी उम्मीद है। इसीलिए सकारात्मक राष्ट्रवाद की सोच की तरफ बढ़ना पड़ेगा।

5. भारतीय संस्कृति, भारतीयता और सकारात्मक राष्ट्रवाद

प्राचीन काल के इतिहास को आप पढ़ेंगे तो अलग तरह का भारत दिखेगा। मध्यकाल के इतिहास में अलग तरह का भारत दिखेगा। आधुनिक काल का

इतिहास भारत और यहाँ की संस्कृति की अलग तस्वीर प्रस्तुत करता है। जिसमें संस्कृति के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू शामिल हैं। जबकि बहुत से लोगों को इसके सिर्फ सकारात्मक तो बहुत से लोगों को सिर्फ नकारात्मक पहलू नजर आते हैं। इन दोनों ही दृष्टियों से भारतीय संस्कृति को समग्रता में नहीं देखा जा सकता।

भारतीय संस्कृति को इस तरह की एकांगी दृष्टि से देखने वाले लोगों से मैं पूछना चाहता हूँ कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के अंदर जो संस्कृति और परम्परा थी वह भारतीय संस्कृति का हिस्सा है या नहीं? वैदिक काल के अंदर जो हमारी सभ्यता, संस्कृति और परम्परा विकसित हुई, वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं? भारत के अंदर जैन काल में जो सभ्यता और संस्कृति विकसित हुई, वह भारत की सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं? बौद्ध काल में जो भारत के अंदर सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ, वो भारत की संस्कृति और सभ्यता का हिस्सा है या नहीं? भारत के अंदर कबीर, नानक, दादू, जायसी, मीरा के भक्ति आंदोलन का जो पूरा अभियान चला वो भारत की सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं? भारत के अंदर 1757 से लेकर 1947 तक दुनिया के सबसे लंबे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जो सभ्यता, संस्कृति और परम्परा विकसित हुई, भारत की सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं?

इतिहास के पन्नों से अगर हम सभ्यता और संस्कृति के इन हिस्सों को निकाल देंगे तो फिर भारत की सभ्यता और संस्कृति का जो हिस्सा बचेगा, उसके आधार पर न तो भारतीय इतिहास की कोई मुकम्मल तस्वीर बनाई जा सकती है, न ही भारतीय संस्कृति को समग्रता से देखने की कोई दृष्टि पाई जा सकती है और न ही भारत के भविष्य की कोई बुनियाद खड़ी की जा सकती है।

आज भारतीय संस्कृति को लेकर दो तरह के लोगों का शोर ज्यादा सुनाई दे रहा है। एक वे लोग हैं जो भारतीय संस्कृति की दुहाई देकर तथाकथित हिन्दू राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं और दूसरे वो जो इनका विरोध करते हुए पूरी भारतीय संस्कृति को खारिज कर रहे हैं। गौरतलब बात यह है कि इन दोनों तबकों

के तर्क-वितर्क, भारतीय संस्कृति और भारतीय परम्परा के नकारात्मक पहलुओं तक ही सीमित हैं। ये दोनों तरह के लोग भारतीय संस्कृति के उस पहलू पर बात नहीं करते जो सकारात्मक है, जो सबको साथ लेकर चलता है, जो पूरी धरा को अपना परिवार मानते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम' की बात करता है और जो अपनी प्रकृति में ही बहुलतावादी है।

भारत प्राचीन से लेकर आधुनिक युग तक एकलवादी होने की जगह बहुलतावादी रहा है जिसका परिणाम है की भारत के अन्दर सबसे पहले वेदों की रचना होती है वो भी एक नहीं चार। नौ दर्शन आगे बढ़ते हैं। ये वही देश है जहाँ जैन दर्शन पैदा होता है। ये वही देश है जहाँ बौद्ध दर्शन पैदा होता है। ये वही देश है जहाँ चार्वाक दर्शन पैदा होता है। ये वही देश है जहाँ सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त दर्शन पैदा होते हैं। इस देश का मानस एक साथ नौ दर्शनों को, नौ तरह की विचारधाराओं को अपने अंदर समाहित करके संचालित करने की क्षमता रखता है। पुराणों की बात करें तो वो भी एक नहीं, अठारह हैं।

इस देश के अंदर प्राचीन काल में बहुत सारे ज्ञानी, विज्ञानी और विद्वान हुए। वे इसलिए हुए क्योंकि यहाँ पर तर्क-वितर्क करने की गुंजाइश थी। प्राचीन इतिहास से लेकर आजादी की लड़ाई के दौरान तक इस देश के अंदर शास्त्रार्थ की परम्परा थी। सबको अपनी बात तर्क के साथ रखने का संपूर्ण अधिकार था। हर मत, हर पंथ, हर विचारधारा को मानने वाले लोग अपने विरोधी मत, पंथ और विचारधारा को मानने वाले लोगों के साथ बहस कर सकते थे, आपस में कई दिनों तक चलने वाले शास्त्रार्थ कर सकते थे। शास्त्रार्थ की स्वीकार्यता की वजह से ही भारतीय संस्कृति और परम्परा में दो विपरीत ध्रुव के सत्य को लेकर चलने वाली विचार पद्धतियों का अस्तित्व था। जहाँ वेदान्त के लिए जगह थी तो चार्वाक के लिए भी जगह थी। क्या आज हम ऐसी सूरत की कल्पना कर सकते हैं?

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारत में कभी भी एकात्मकता देखने को नहीं मिलती। प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति विभिन्न मत-मतान्तर, विश्वास और पद्धतियों के मेल-जोल से आगे बढ़ी। उसके बाद अगर मध्यकाल

की बात करें तो उसकी पहचान सिर्फ मुगलों, नवाबों, राजाओं और सामंतों से नहीं की जा सकती। उसी दौर में कबीर, तुलसी, सूर, रैदास, रहीम, मीरा और नानक पैदा होते हैं। भक्तिकाल का पूरा आन्दोलन खड़ा होता है। उत्तर और दक्षिण के भेद को मिटाते हुए यह सांस्कृतिक आन्दोलन अपना एक व्यापक राष्ट्रीय रूप अख्तियार करता है, जिसमें मानवता और मानवीय प्रेम का बखान किया जाता है। भक्ति आन्दोलन की यह विरासत भारतीय संस्कृति की एक अनमोल धरोहर है। आधुनिक काल में अंग्रेजों के खिलाफ आजादी का जो आन्दोलन था उसमें भारत की बहुलतावादी संस्कृति की एक अलग झांकी देखने को मिलती है। जिसमें सभी धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों और क्षेत्रों के लोगों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और इस देश को अंग्रेजों की गुलामी से आजाद कराया।

लेकिन आज भारत की इस बहुलतावादी संस्कृति को खत्म करने की साजिश चल रही है। बहुलता का जो दर्शन इस देश ने हजारों सालों से अर्जित और विकसित किया था क्या उसे खत्म कर दें? उनकी चले तो वो इस देश को एक पंथ, एक धर्म, एक विचार, एक सोच में बदल दें। अपने इस सपने को पूरा करने के लिए नकारात्मक राष्ट्रवाद के द्वारा नफरत का जाल बुना जा रहा है, धर्म के आधार पर लोगों को आपस में लड़वाया जा रहा है। गंगा-जमुनी तहजीब वाले इस देश को हिन्दू और मुस्लिम की बाइनरी में बाँटा जा रहा है। इस नकारात्मक राष्ट्रवाद के नाम पर सर-ए-राह किसी को भी मारा जा सकता है। आज एक पार्टी, एक संगठन, एक आदमी को देश से भी बड़ा बनाने की कोशिश हो रही है जो न सिर्फ हमारे लोकतान्त्रिक मूल्यों के खिलाफ है बल्कि इस देश की आत्मा जो कि यहाँ की बहुलतावादी संस्कृति में बसती है, के भी खिलाफ है। बहुलतावादी संस्कृति के खत्म होने का मतलब है विविध विचारों के पल्लवित और पुष्पित होने के रास्ते का बन्द हो जाना जिसका मतलब है नये ज्ञान-विज्ञान का रास्ता बन्द हो जाना और अंततोगत्वा भारत के तरक्की का रास्ता बन्द हो जाना। क्या भारत के बेटे-बेटियाँ ये पसंद करेंगे कि हमारा देश भी पाकिस्तान और नेपाल की तरह धर्म आधारित राष्ट्र बनकर एक ऐसी बन्द गली में फंस जाए जहाँ से आगे का कोई रास्ता नहीं निकलता है।

नकारात्मक राष्ट्रवाद के उलट सकारात्मक राष्ट्रवाद, भारत की विविधता को भारत के अस्तित्व के साथ जोड़ता है। इसके अनुसार भारत उस गुलदस्ते के समान है जो विभिन्न प्रकार के फूलों से बना है। वो फूल भारत की विभिन्न भाषाओं के हैं, वो फूल भारत के विभिन्न क्षेत्रों के हैं, वो फूल भारत के विभन्न धर्मों और सम्प्रदायों के हैं, वो फूल भारत के विभिन्न नदियों, पहाड़ों और मैदानों के हैं, वो फूल भारत के विभिन्न मौसमों के हैं, वो फूल भारत के विभिन्न रहन-सहन, खान-पान और पहनावे के हैं। वो फूल भारत के विभिन्न मतों, विश्वासों और पद्धतियों के हैं।

मै आप लोगों से यह कहना चाहता हूँ कि दुनिया के अंदर तमाम देश बने हैं, तमाम भूखंड बने हैं लेकिन भारत एक अद्भुत देश है। भारत के पास जितनी उपजाऊ जमीन है, दुनिया के बहुत कम देशों के पास है। भारत के पास जितनी नदियां हैं, दुनिया के बहुत कम देशों में इतनी नदियां बहती हैं। भारत के पास जितना खनिज पदार्थ है, दुनिया के बहुत कम देशों के पास है। भारत में जितनी ऋतुएं हैं, दुनिया के बहुत कम देशों में हैं। भारत के पास जितनी श्रम शक्ति है, दुनिया के बहुत कम देशों में हैं। भारत के अंदर जितनी समस्याएं हैं, उन समस्याओं के समाधान की ताकत भी भारत के पास है।

मैं जब भारतीय संस्कृति पर चिन्तन करता हूँ तब अध्यात्म और विज्ञान को अलगाने के बजाय उन्हें एक-दूसरे के करीब, एक दूसरे की जरूरत के तौर पर रेखांकित करता हूँ। हमें आध्यात्म भी चाहिए और विज्ञान भी। व्यक्तित्व के विकास और सकारात्मक चिन्तन के विकास के लिए हमें अध्यात्म चाहिए तो इस देश के भौतिक विकास के लिए विज्ञान और तकनीक चाहिए। अध्यात्मक के द्वारा व्यक्ति के नैतिक चिन्तन के विकास को अगर विज्ञान का साथ नहीं मिलेगा तो मनुष्य की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना भी मुश्किल होगा वही विज्ञान के विकास को अगर अध्यात्मिक व नैतिक दृष्टि के साथ आगे नहीं बढ़ाया गया तो नागासाकी और हिरोशिमा का मंजर दिखने लगेगा।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अगर आगे बढ़ाना है, तो हमें महात्मा बुद्ध से स्वामी विवेकानंद की परम्परा को और कबीर से शहीद भगत सिंह की परम्परा

को पुनर्जीवित करने के लिए आगे बढ़ना पड़ेगा। मैं जिम्मेदारी से कहना चाहता हूँ कि महात्मा बुद्ध से लेकर स्वामी विवेकानंद तक और कबीर से लेकर शहीद भगत सिंह तक की परम्परा, भारत की गौरवशाली परम्परा रही है। यह परम्परा भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सर्वोच्च गुणों पर, बलिदान पर, त्याग पर और तपस्या पर आधारित रही है। कोई भी व्यक्ति, कोई भी समाज और कोई भी राष्ट्र अपने इतिहास के सकारात्मक पहलुओं को संयोजित करके ही आगे बढ़ सकता है। इतिहास ने यही सिखाया है और भविष्य भी इसी पर टिका हुआ है। इसलिए नौजवानों आपसे कहना चाहता हूँ कि अगर देश को आगे बढ़ाना है तो हमें भारत की बहुलतावादी सभ्यता और संस्कृति के सकारात्मक पहलुओं को पुष्पित-पल्लवित और विकसित करना होगा।

अगर हम अपने देश से सच में मोहब्बत करते हैं तो जिससे भारत मजबूत बने, वह रास्ता अपनाना है। भारतीय इतिहास में कभी भी एक भाषा, एक पहनावा, एक खान-पान नहीं रहा। यह एक हो भी नहीं सकता। भारत को अगर महाशक्ति बनाना है तो सभी को एकता के सूत्र में बंध कर रहना होगा। हमारे देश में कोई भी ऐसा परिवार नहीं होगा जहाँ 5 लोग रहते हैं और सभी का पहनावा एक जैसा हो, सभी एक ही जगह घूमने जाते हों, सभी की खान-पान की आदतें भी एक सी नहीं होंगी फिर भी परिवार चलता रहता है, उसी प्रकार हमारे समाज में अलग-अलग मत और धर्म के लोग हैं पर फिर भी यह देश चल रहा है। क्योंकि हम एक-दूसरे की पसंद-नापसंद का ख्याल रखते हैं, सम्मान करते हैं। भारतीयता की मूल पहचान यही है कि सभी धर्म, भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, विचार को एक साथ सम्मान सहित जोड़े रखना। अपनी गलती को सुधारना और साथ-साथ दूसरे की भी गलती को भी ठीक करना। अपनी अच्छाइयों के साथ दूसरों की अच्छाई का भी सम्मान करना। जो भी भारत में पैदा हुआ है, भारत से मोहब्बत करता है, भारत को एकजुट रखना चाहता है, तो उन्हें संघर्ष करना ही होगा। सिर्फ भारत माता की जय - बोलने से नहीं, संघर्ष करने से भारतीयता बनी रहेगी।

जितनी तरह के टेढ़े-मेढ़े रास्तों को पार कर भारत आज बना है, उसके लिए कोई ताकत है जो इसे बनाए हुए है। सब जानते हैं कि कई सभ्यताएं बनी भी

और खत्म भी हो गई। लेकिन भारत कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। इकबाल ने यूँ ही नहीं लिखा –

यूनान-ओ-मिस्र-ओ-रूमा सब मिट गए जहाँ से
अब तक मगर है बाकी नाम-ओ-निशाँ हमारा
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जमाँ हमारा

6. सकारात्मक राष्ट्रवाद और भारतीय संविधान

आमतौर पर संविधान को नियमों और उपनियमों का एक ऐसा लिखित दस्तावेज माना जाता है, जिसके आधार पर किसी राष्ट्र की सरकार का संचालन किया जाता है। यह देश की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का बुनियादी ढाँचा निर्धारित करता है। लेकिन भारतीय संविधान को सिर्फ नियमों और उपनियमों का दस्तावेज भर नहीं माना जा सकता। अंग्रेजों की लम्बी गुलामी के बाद भारत ने अपने संविधान के जरिये पूरी दुनिया के सामने अपनी संप्रभुता, स्वतंत्रता और स्वशासन की क्षमता को अभिव्यक्त किया और साथ ही पूरे देशवासियों के सामने देश को आगे बढ़ाने का एक मुकम्मल राह दिखाया, एक रौशनी मुहैया कराई।

यही वजह है कि सकारात्मक राष्ट्रवाद संविधान को अपना बुनियाद, अपना आधार मानता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद के नजरिए से देखें तो संविधान महज एक किताब नहीं बल्कि हमारे शहीदों के सपनों के भारत की वह तस्वीर है जिसे हमें प्राप्त करना है, और 'भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य' बनाना है। हमारा संविधान करोड़ों देशवासियों की उस बहुलतावादी आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करता है जिसे सकारात्मक राष्ट्रवाद भारत की आत्मा के तौर पर रेखांकित करता है।

भारतीय संविधान की शुरुआत प्रस्तावना से होती है जिसमें लिखा है – हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को: सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

इस प्रस्तावना की सबसे बड़ी खासियत यह है कि बहुत ही कम शब्दों में भारतीय संविधान की मूल भावना को स्पष्ट कर दिया गया है। मेरा मानना है कि प्रस्तावना में दिए गए शब्दों के असल मर्म को समझे बगैर संविधान को नहीं समझा जा सकता। प्रस्तावना की शुरुआत होती है 'हम, भारत के लोग' से। इस 'हम' में पूरा हिन्दुस्तान शामिल है चाहे वह तमिलनाडु के समुद्र के किनारे रहने वाले मछुवारे हों, जम्मू-कश्मीर की आखिरी बर्फ की पहाड़ियों के नीचे अपनी भेड़ों के साथ रह रहे गड़ेरिये हों, नार्थ ईस्ट के किसी छोटे से गाँव में रहने वाला कोई नागा परिवार हो, कच्छ के रेगिस्तान में अपने ऊँट के साथ यात्रा कर रहा कोई राहगीर हो या फिर छत्तीसगढ़ के जंगलों में रहने वाले आदिवासी। ये सब 'भारत के लोग' हैं जो 'हम' में शामिल हैं।

भारत को विरासत में बहुत सारी ऐसी चीजें मिलीं जिस पर हमें फख्र है लेकिन कुछ ऐसी भी चीजें हमारी विरासत में शामिल हैं जो हमारे राष्ट्र की एकता, अखंडता और बंधुत्व की राह में रुकावट पैदा करती हैं। यह रुकावट पैदा होती है हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक गैर-बराबरी से। गौरतलब बात यह है कि इस गैर-बराबरी का बहुत बड़ा हिस्सा हमें हमारी विरासत में मिला है जो इतिहास की गलतियों का नतीजा रहा है। भारतीय संविधान इन गलतियों को सुधारने की एक जरूरी पहल करता है। यह पहल हमें सार्वभौमिक मताधिकार, बराबरी, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक भेदभाव का विरोध और वंचित तबकों को दिए गए विशेषाधिकारों में स्पष्ट रूप से नजर आता है।

आज के वक्त में संविधान पर बात करना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि इस देश में नकारात्मक राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व करने वाली एक ऐसी ताकत उभरी

है जो हमारे संविधान को बदल देना चाहती है। हमें यह समझने की जरूरत है कि ये वही ताकत है जो संविधान के बनने के वक्त भी इसका विरोध कर रही थी। दरअसल इन्हें हमारे संविधान की न्याय, बहुलता और समानता जैसे मूल्यों से दिक्कत है जो इनके एक मत, एक विचार, एक धर्म, एक दल और एक परचम वाली एकांगी सोच के खिलाफ है। हमारे और इनकी विचारधारा में एक बुनियादी फर्क यह है कि इनका नकारात्मक राष्ट्रवाद संविधान के खिलाफ है जबकि हमारा सकारात्मक राष्ट्रवाद इस संविधान को ही अपना बुनियाद मानता है, अपना पथप्रदर्शक मानता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की यह कोशिश है कि देश में एक ऐसी एकता बने, एक ऐसा जज्बा पैदा हो जो एक नए भारत का निर्माण करे, जो संविधान के मूल्यों पर आधारित हो, जो उसके आदर्शों पर आधारित हो।

7. सकारात्मक राष्ट्रवाद और सामाजिक न्याय

एक विचार के रूप में सामाजिक न्याय का सिद्धान्त समाज में व्याप्त हर तरह के भेदभाव को खारिज करता है। चाहे वह भेदभाव रंग के आधार पर हो, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो, धर्म के आधार पर हो, संप्रदाय के आधार पर हो, जाति के आधार पर हो, क्षेत्र के आधार पर हो, भाषा के आधार पर हो या फिर किसी अन्य सामाजिक पहचान के आधार पर हो – सामाजिक न्याय इन भेदभावों के खिलाफ न्याय की एक ऐसी अवधारणा पेश करता है जिसके तहत हर इंसान को चाहे वह किसी भी सामाजिक पहचान से जुड़ा हो, को भेदभाव से मुक्त एक बराबरी, भाईचारा और न्यायपूर्ण समाज में रहने के हक को रेखांकित करता है।

संसाधनों का न्यायपूर्ण बँटवारा और अवसर की समानता सामाजिक न्याय के दो प्रमुख घटक हैं। इस लिहाज से देखा जाए तो भारतीय समाज सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने में पूरी तरह से असफल रहा है। हमारे समाज में सदियों से संसाधनों और अवसरों का अन्यायपूर्ण वितरण होता रहा है। इस अन्यायपूर्ण वितरण की वजह से समाज में कुछ खास वर्ग के लोगों का वर्चस्व स्थापित हुआ। नतीजा यह निकला कि एक बड़ी आबादी को अमानवीय जिंदगी जीने के लिए मजबूर

होना पड़ा। जिसमें इस देश के दलित, पिछड़े, आदिवासी, अल्पसंख्यक और महिलायें शामिल हैं।

हमारे देश में लोगों को सामाजिक रूप से बाँटने में जाति व्यवस्था, धार्मिक कट्टरता और पितृसत्तात्मक सोच की अहम भूमिका रही है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र और अछूत जैसे वर्गों में बंटा हमारा देश सामाजिक रूप से कभी एक नहीं हो पाया। गौरतलब बात यह है कि यह सामाजिक विभाजन सिर्फ गुजरे जमाने की बात नहीं बल्कि आज की भी हकीकत है। शूद्र और अछूत समझी जाने वाली जातियों की स्थिति आज भी बेहद दयनीय है क्योंकि हजारों सालों से इन्हें समाज के सबसे निचले पायदान पर रखा गया जहाँ इन्हें जीवन जीने के बुनियादी अधि कार तक नसीब नहीं रहे हैं। जब तक आदिवासी मुख्यधारा के समाज से अलग थे तब तक उन्हें वो शोषण नहीं झेलने पड़े जो मुख्यधारा से जुड़े दलित और पिछड़े वर्ग की जातियों को झेलने पड़े लेकिन ज्यों ही मुख्यधारा की सत्ता की निगाहें इनके जल, जंगल और जमीन पर पड़ी, इनके शोषण का भी एक न रुकने वाला सिलसिला शुरू हो गया। महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब रही है। नारी को देवी मानने का ढोंग रचने वाला हमारा समाज आज भी इन्हें इंसान का दर्जा देने में नाकाम रहा है। जहाँ तक अल्पसंख्यकों का सवाल है तो इनकी स्थिति का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि आज भी इनकी जिंदगी की सुरक्षा इनके लिए सबसे बड़ा मुद्दा है, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार का सवाल इनकी प्राथमिकता में शामिल नहीं है। बुद्ध, कबीर, रैदास, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, फातिमा शेख, रमाबाई, महात्मा गांधी, डॉ अंबेडकर, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि ना जाने कितने लोगों ने इस सामाजिक भेदभाव के खिलाफ लड़ाई लड़ी और इसे खत्म करने की कोशिश की, लेकिन आज भी ये भेदभाव हमारे समाज की एक ऐसी सच्चाई है जिससे हम मुंह नहीं मोड़ सकते।

भारत का संविधान सामाजिक रूप से भेदभाव के शिकार इन समूहों को सशक्त करने के लिए कुछ जरूरी कदम उठाता है जिसमें सबसे अहम है–आरक्षण। संविधान बनने के तुरंत बाद यानी 1950 से ही दलित और आदिवासी समाज को सरकारी नौकरियों और सरकारी शिक्षण संस्थानों में क्रमशः

15 प्रतिशत और 7.5 प्रतिशत का आरक्षण दिया जा रहा है। 1990 के दशक में मंडल कमीशन की अनुशंसा पर पिछड़े वर्ग को भी आरक्षण देने की बात शुरू हुई और आगे चलकर पिछड़े वर्ग के तहत आने वाली जातियों को 27.5 प्रतिशत का आरक्षण दे दिया गया। अभी हाल में ही 2019 में केंद्र सरकार ने सामान्य वर्ग के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए EWS (Economically Weaker Section) कोटे के नाम से 10 प्रतिशत के आरक्षण का प्रावधान किया है।

ये तो रही तथ्यात्मक बातें जिसे जानना हम सबके लिए बहुत जरूरी है। गौरतलब बात यह है कि आरक्षण पर जब भी बात होती है आमतौर पर दो गुट बन जाते हैं – एक आरक्षण समर्थक और दूसरा आरक्षण विरोधी। दोनों वर्गों के अपने-अपने तर्क और अपनी-अपनी समझदारी होती है। अक्सर यह देखने को मिलता है कि आरक्षण समर्थक अवसरों और संसाधनों के न्यायपूर्ण बँटवारे के लिए अपने तर्कों को सिर्फ आरक्षण की व्यवस्था तक सीमित रखते हैं, मानो सिर्फ आरक्षण से ही वह वंचित तबकों को उनका वाजिब हक दिला देंगे। वहीं दूसरी तरफ आरक्षण विरोधियों का एक प्रमुख तर्क यह होता है कि जब शुरुआत में आरक्षण की सीमा 10 वर्षों तक के लिए तय की गई थी तो उसे आगे क्यों बढ़ाया गया? इस तर्क के आधार पर वे आरक्षण को खत्म करने की वकालत करते हैं।

हमारी सोच इन दोनों तरह के लोगों से अलग है। हमारा मानना है कि हजार सालों की गैर-बराबरी को सिर्फ दस सालों के आरक्षण से खत्म नहीं किया जा सकता इसलिए अभी वह वक्त नहीं आया है कि आरक्षण को हटा दिया जाए, लेकिन इसके साथ ही इसमें कुछ ऐसे संशोधन किये जाने की जरूरत है जिससे हर वर्ग के सबसे जरूरतमंद को इसका लाभ मिल सके। आरक्षण का विरोध करने वाले साथियों से मैं कहना चाहता हूँ कि इस देश में संविधान लागू होने से पहले हजारों सालों से एक खास तबके को वर्ण व्यवस्था के आधार पर विशेषाधिकार के रूप में आरक्षण मिलता आया है, हम उसका विरोध क्यों नहीं करते? आरक्षण का समर्थन करने वाले साथियों से भी मैं यह कहना चाहता हूँ कि सिर्फ आरक्षण से कुछ नहीं होगा। अगर आप ये सोचते हैं कि सिर्फ आरक्षण

के दम पर आप वंचित वर्ग के लोगों की जिंदगी को बेहतर कर सकते हैं तो मेरा ख्याल है आप गलत सोच रहे हैं। जो एक बड़ी आबादी अवसरों और संसाधनों के न्यायपूर्ण बँटवारे से महरूम रह गई है, आरक्षण उसके लिए 'ऊँट के मुंह में जीरा' के बराबर है। इसलिए अब समय आ गया है कि हम सब मिलकर इसके लिए कुछ और रास्तों की तलाश करें ताकि भारतीय समाज की इस भेदभाव रूपी कुरूपता को जितनी जल्दी हो सके, खत्म कर सकें।

भारत में सामाजिक न्याय की लड़ाई का एक बड़ा हिस्सा सामाजिक न्याय की राजनीति से जुड़ता है। आजादी के बाद खासकर नब्बे के दशक से सामाजिक न्याय की राजनीति का एक मजबूत अध्याय शुरू होता है। सामाजिक न्याय की यह राजनीति, जो चली तो थी सामाजिक भेदभाव को खत्म करने और हाशिये के लोगों को उनका वाजिब हक दिलाने के लिए लेकिन समय के साथ-साथ यह राजनीति भी बाकी राजनीतिक धड़ों की तरह तमाम विसंगतियों की शिकार हो गई। आज सामाजिक न्याय के नाम पर राजनीति करने वाली पार्टियाँ परिवारवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद और भ्रष्टाचार के जाल में इस कदर उलझी हुई हैं कि सामाजिक न्याय का लक्ष्य उनके लिए दूर की कौड़ी साबित हो रही है।

मेरा यह मानना है कि सामाजिक न्याय के लक्ष्यों की प्राप्ति सिर्फ पार्टी या दल के दम पर नहीं की जा सकती बल्कि इसके लिए समाज के सभी वर्गों को आगे आना होगा और बिना जाति, धर्म, लिंग, भाषा और क्षेत्र देखे उन तमाम लोगों की मदद करनी होगी जो मुख्यधारा के विकास की प्रक्रिया से छूट गए। अगर आप यह मानते हैं कि यह देश सबका है तो आपको यह मानने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि जो गरीब हैं, जो मजदूर हैं, जो किसान हैं, जो दलित हैं, जो आदिवासी हैं, जो पिछड़े हैं, जो अल्पसंख्यक हैं, जो महिलायें हैं, वो भी इसी देश के नागरिक हैं, वो भी माँ भारती के ही बेटे-बेटियाँ हैं। हमें एक ऐसी व्यवस्था बनानी होगी जो जाति व्यवस्था के उलट किसी से कोई भेद-भाव नहीं करती हो, जो सबको एक बराबरी, एक समान नजर से देखती हो, जो सबकी तरक्की का रास्ता खोलती हो, जो सामाजिक न्याय का रास्ता खोलती हो।

सामाजिक न्याय की यह अवधारणा सकारात्मक राष्ट्रवाद की वैचारिकी का एक बेहद जरूरी पहलू है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की विचारधारा समाज में किसी

भी तरह के वर्चस्व, अन्याय और गैर-बराबरी के खिलाफ है। सकारात्मक राष्ट्रवाद का यह स्पष्ट मानना है कि सामाजिक न्याय को स्थापित किये बगैर राजनैतिक व आर्थिक न्याय स्थापित नहीं किया जा सकता।

8. सकारात्मक राष्ट्रवाद और राजनैतिक न्याय

राजनैतिक न्याय का सम्बन्ध न्याय की उस अवधारणा से है, जिसका ताल्लुक राजनीति और उससे संबन्धित क्षेत्र से होता है। एक अवधारणा के तौर पर लोकतंत्र में राजनैतिक न्याय की अहम भूमिका होती है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। ऐसे में हमारे लिए राजनैतिक न्याय पर बात करना और भी जरूरी हो जाता है।

भारत एक विविधता वाला देश है जिसमें विभिन्न भाषाओं, बोलियों, धर्मों, जातियों, क्षेत्रों, संस्कृतियों आदि पहचान वाले लोग रहते हैं। कायदे से होना तो यह चाहिए था कि भारत की यह सतरंगी पहचान यहाँ की राजनीति में नजर आती लेकिन राजनैतिक प्रतिनिधित्व के मामले में हमारे देश की राजनीति फिसड्डी साबित हुई है। भारत को 'युवाओं का देश' कहा जाता है क्योंकि यहाँ की 65 फीसदी से ज्यादा आबादी युवाओं की है लेकिन अगर राजनीति में इनकी नुमाइंदगी को देखें तो वह बहुत कम है। यही हाल महिलाओं का भी है जिन्हें कहने को तो आधी आबादी कहा जाता है लेकिन राजनीति में इनकी नुमाइंदगी बेहद शोचनीय है। इस मसले पर मजदूर, किसान, अल्पसंख्यक जैसे वर्गों के हालात तो और भी खराब हैं। सकारात्मक राष्ट्रवाद का यह स्पष्ट मानना है कि जब तक हमारी राजनीति में सभी वर्गों के लोगों का उचित प्रतिनिधित्व तय नहीं होगा तब तक हम सही मायने में लोकतंत्र को लागू नहीं करा पायेंगे।

राजनैतिक न्याय से ही जुड़ा हुआ एक और मसला है जिसे हम 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' कहते हैं। लोकतंत्र को सुचारू रूप से चलाने में 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' की अहम भूमिका होती है। लेकिन हाल के दिनों में हमने देखा कि सबसे ज्यादा हमले हमारे इसी अधिकार पर हुए। सत्ता में बैठे नकारात्मक राष्ट्रवादी लोगों को हमारा संविधान इसलिए भी चुभता है क्योंकि वह

'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' की गारंटी देता है, इसे एक 'मौलिक अधिकार' के तौर पर रेखांकित करता है। उनकी हर संभव कोशिश है कि अवाम की आवाज को स्वर देने वाली मीडिया को पूरी तरह बंद कर दिया जाए। इसके समानांतर ये एक ऐसी मीडिया को शह दे रहे हैं जो जनता के जरूरी सवालों के बजाय इनकी नकारात्मक राजनीति का प्रचार करते हैं और लोगों के बीच नफरत पैदा करते हैं। सकारात्मक राष्ट्रवाद 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के इस राजनैतिक हक को इसलिए भी जरूरी मानता है ताकि सत्ता की सह पर नफरत का कारोबार कर रहे मीडिया घरानों के खिलाफ एक आवाज उठाई जा सके और अवाम के हक की उनके बोलने की आजादी की लड़ाई को लड़ा जा सके।

एक वक्त था जब राजनीति समाज सेवा का जरिया था, लेकिन आज यह एक व्यवसाय में तब्दील हो गया है। व्यवसाय की तरह ही राजनीति में भी पैसे लगाए जा रहे हैं और उससे मुनाफा कमाया जा रहा है। बड़े-बड़े कार्पोरेट घरानों और राजनैतिक पार्टियों के बीच का सम्बन्ध अब कोई छुपी हुई चीज नहीं रही। मनी, मसल्स और पावर की यह राजनीति असल में अवाम के हक के बजाय इन कार्पोरेट घरानों के हक की बात करती है, जिनसे इन्हें हर चुनावों में भारी मात्रा में चंदा मिलता है। दिलचस्प बात यह है कि खुद को सबसे बड़ा राष्ट्रवादी बताने वाली सत्ताधारी पार्टी आज इन कार्पोरेट घरानों को सब कुछ बेचने पर तुली हुई है। यही वजह है कि हम इन्हें राष्ट्रवादी कहने के बजाय नकारात्मक राष्ट्रवादी कहते हैं।

गौरतलब बात यह है कि हमारी जिंदगी, हमारे समाज और देश से जुड़े अहम फैसले हमारे यहाँ कि राजनीति द्वारा तय किये जाते हैं। लेकिन अफसोस हम इस राजनीति को गंभीरता से नहीं लेते। यही वजह है कि हमारे देश की राजनीति में अपराधी, जातिवादी और भ्रष्टाचारी लोगों का बोल-बाला है। इसका नतीजा यह निकला कि धीरे-धीरे राजनीति से लोगों का मोह-भंग हो गया। आज देश की एक बड़ी आबादी जिसमें सबसे ज्यादा युवा वर्ग है, खुद को अपोलिटिकल यानी अराजनैतिक कहलाना पसंद करती है। देश की राजनीति पर उनकी कोई राय नहीं होती। यहाँ तक कि वे राजनीति पर बात करना तक पसंद नहीं करते। सत्तावर्ग के द्वारा यह सब कुछ साजिशन किया गया है ताकि देश से मोहब्बत करने वाले

पढ़े-लिखे और योग्य लोग देश की राजनीति में न आयें। सकारात्मक राष्ट्रवाद राजनैतिक न्याय के हक में खड़ी एक ऐसी विचारधारा है जो राजनीति को बदनाम कर अपने स्वार्थ की रोटी सेकने वाली सत्ता के खिलाफ एक लोकतांत्रिक लड़ाई लड़ रही है। सकारात्मक राष्ट्रवाद उन सभी अराजनैतिक लोगों से राजनीति में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने की गुहार करती है ताकि इस देश के लोकतंत्र को बचाया जा सके, उस राजनीति को बचाया जा सके जो अवाम की आवाज है।

9. सकारात्मक राष्ट्रवाद और आर्थिक न्याय

देश को सशक्त, आत्मनिर्भर और मजबूत बनाने के लिए सामाजिक और राजनैतिक न्याय के साथ-साथ आर्थिक न्याय भी एक जरूरी पहलू है। आर्थिक न्याय की गारंटी किये बगैर सामाजिक और राजनैतिक न्याय सुनिश्चित नहीं किये जा सकते। आर्थिक न्याय की गारंटी का मतलब है, सबको रोजगार की प्राप्ति। इस लिहाज से देखें तो हम अभी आर्थिक न्याय की गारंटी से कोसों दूर हैं।

हमारा देश बेरोजगारी के एक ऐसे भयावह हालात से गुजर रहा है, जिसमें न सिर्फ नए लोगों को रोजगार नहीं मिल पा रहा है बल्कि जिन लोगों के पास रोजगार था, वो भी अपने रोजगार खो रहे हैं। यह स्थिति सिर्फ प्राइवेट या असंगठित क्षेत्रों की ही नहीं है बल्कि सरकारी संस्थाओं में काम कर रहे लोगों की नौकरियां भी खतरे से बाहर नहीं रही। मौजूदा सरकार जिस तरह सरकारी उपक्रमों और संस्थाओं को निजी कंपनियों के हाथों बेच रही है, उससे रोजगार का संकट और भी गहरा होता जा रहा है। गौरतलब बात यह है कि सरकार रेलवे जैसी संस्थाओं का भी निजीकरण कर रही है जो हमेशा से मुनाफे में रही है।

कभी भारतीय अर्थव्यवस्था की गिनती दुनिया में तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था के रूप में की जाती थी लेकिन वर्तमान में इसकी जीडीपी 23.9% नीचे गिर कर 40 सालों का रिकार्ड तोड़ दी है। उद्योग-धंधों की बात करें तो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाने वाले छोटे और मझोले कद के उद्योग-धंधों की स्थिति आज सबसे खराब है। नोटबंदी और जीएसटी जैसे कानून ने तो पहले से ही इन उद्योग-धंधों के हालात को खस्ता कर रखा था, रही-सही

कसर को कोरोना के वर्तमान संकट ने पूरा कर दिया। कोरोना के इस संकट ने न सिर्फ उद्योग-धंधों को चौपट किया बल्कि बड़े पैमाने पर लोगों की नौकरियाँ भी छीन ली। कोरोना की इस महामारी ने भारत की बेरोजगारी दर को 24 फीसदी तक बढ़ा दिया। केंद्र सरकार पिछले 6 सालों में रोजगार के नए अवसर पैदा करना तो दूर ऐसे हालात में बचे-कुचे रोजगार के अवसर को भी निजीकरण के माध्यम से खत्म करने पर तुली हुई है। आत्मनिर्भर भारत बनाने की आड़ में देश के लोगों को रोजगार के लिए आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर बनाने का रास्ता खोला जा रहा है।

आज एक ऐसा नकारात्मक माहौल बनाया जा रहा है कि भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में सबको रोजगार देना संभव ही नहीं है। इस नकारात्मक माहौल से इतर अगर देखें तो भारत अपनी भौगोलिक, प्राकृतिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण दुनिया का एक अनूठा मुल्क नजर आता है। भारत के अंदर जितनी नदियाँ बहती हैं, दुनिया के कम देशों में उतनी नदियाँ बहती हैं, भारत के अंदर जितनी पर्वत श्रृंखलाएं हैं, दुनिया के कम देशों में उतनी पर्वत श्रृंखलाएं हैं, भारत के अंदर जितनी उपजाऊ जमीन है, दुनिया के कम देशों के पास उतनी उतनी उपजाऊ जमीन है, भारत में जितनी ऋतुएँ हैं, दुनिया के कम देशों में उतनी ऋतुएँ हैं, भारत में जितनी बारिश होती है दुनिया के कम देशों में उतनी बारिश होती है, भारत के अंदर जितनी खनिज संपदा हैं, दुनिया के कम देशों में उतनी खनिज संपदा है, भारत वनस्पति के मामले में जितना विविधता और प्रचुरता लिए हुए है, दुनिया के कम देशों की वनस्पति में यह विशेषता पाई जाती है। कुदरत ने भारत को जितना बौद्धिक और मानवीय संपदा प्रदान किया है, वह दुनिया के कम देशों को मिला है। यही वजह है कि दुनिया भर के बड़े-बड़े अविष्कारों, खोजों, मानवीय सभ्यता को बेहतर बनाने वाले चिंतन और वैश्विक स्तर के संस्थानों के संचालन में माँ भारती के बेटे-बेटियों की अहम भूमिका है।

हमारा मानना है कि माँ भारती के सभी बेटे-बेटियों के अंदर कोई ना कोई सकारात्मक ऊर्जा जरूर है। जरूरत है तो उस ऊर्जा को एक माला के रूप में पिरोने की। उस माला के अलग-अलग मोतियों की ऊर्जा को जोड़कर एक सूत्र में बाँधने वाले धागे का नाम है - सकारात्मक राष्ट्रवाद, जो लोगों को आपस में

जोड़कर, बिखरी हुई ऊर्जा को इकट्ठा कर, तथा एक सकारात्मक चिंतन के द्वारा राष्ट्र निर्माण के लिए दृढसंकल्पित है। सकारात्मक राष्ट्रवाद का चिन्तन इस बात को मानता है कि अगर इस देश की समस्त ऊर्जा को इकट्ठा किया जाए तो नया चिंतन पैदा होगा। नए चिंतन से नया ज्ञान और नए ज्ञान से नया विज्ञान पैदा होगा, नए विज्ञान से नई तकनीक पैदा होगी। हम तकनीक, प्रौद्योगिकी और ज्ञान-विज्ञान के स्तर पर दुनिया का मुकाबला कर पाएंगे और इस देश की वर्तमान समस्याओं के समाधान का रास्ता निकाल पायेंगे। भारत की प्राकृतिक संसाधन, मानवीय बौद्धिकता और श्रमशक्ति को एक सूत्र में पिरो कर एक नई सकारात्मक दिशा में लगा दिया जाए तो उस ऊर्जा से हम नए कारोबार का, नए उद्योगों का और नए विकास के तंत्र का निर्माण कर सकते हैं।

सकारात्मक राष्ट्रवाद के चिंतन के बुनियाद के दो प्रमुख स्तम्भ हैं, पहला – लोगों की एकता और मोहब्बत तथा दूसरा – देश के निर्माण में सभी लोगों की हिस्सेदारी। अगर इस देश के आधे से ज्यादा लोग बेरोजगार पड़े हैं, उनकी ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं हो रहा है तो इसका मतलब है कि राष्ट्र के निर्माण में उनका कोई योगदान नहीं है, कोई हिस्सेदारी नहीं है। इस देश को आगे बढ़ाना है तो देश के निर्माण में देश के लोगों के हिस्सेदारी को सुनिश्चित करना पड़ेगा। इस हिस्सेदारी को ही हम रोजगार कहते हैं। सभी की हिस्सेदारी को सुनिश्चित किये बगैर हम एक मजबूत और सशक्त राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते।

हमारा स्पष्ट मानना है कि तकनीक की मदद से भारत की प्राकृतिक संसाधन, मानवीय बौद्धिकता और श्रमशक्ति के अनुरूप ऐसे उद्योग-धंधे और कल-कारखाने विकसित किये जा सकते हैं जिससे सभी को रोजगार मिल सके। जब हम तकनीक कह रहे हैं तो इस बात का खासा ध्यान रखना होगा कि आज हमें दुनिया की प्रचलित तकनीक का अंधाधुंध अनुकरण करने के बजाय भारत की परिस्थितियों के अनुरूप तकनीक को विकसित करने की जरूरत है। हमें ऐसी तकनीक नहीं चाहिए जो हमारी प्रकृति के लिए नुकसानदायक हो और न ही हमें ऐसी तकनीक चाहिए जो हमारे लोगों के रोजगार छीन ले, जिसमें मानवीय श्रम की जरूरत न हो। गौरतलब बात यह है कि भारत एक श्रमबाहुल्य देश है, ऐसे में हमें ऐसी तकनीक की तरफ बढ़ना होगा जो हमारे देशवासियों के श्रम का

सम्मान करे, उन्हें रोजगार दे और राष्ट्र-निर्माण में उनकी हिस्सेदारी को सुनिश्चित करे।

10. सकारात्मक राष्ट्रवाद और प्रकृति संरक्षण

हम सभी इंसानों की जिंदगी बल्कि यूँ कहूँ कि पूरी दुनिया का अस्तित्व ही प्रकृति पर निर्भर है। इस सच्चाई को जानने के बावजूद प्रकृति को लेकर हम इंसानों का रवैया बहुत दिक्कत-तलब रहा है। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, वृक्षों की कटाई, नदियों के प्राकृतिक रूप को विरूपित करना, वायुमंडल में हानिकारक गैसों का उत्सर्जन आदि मानवीय क्रियाकलाप प्रकृति को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचा रहे हैं। प्रकृति को नुकसान पहुंचाने की एक बड़ी वजह हमारी आधुनिक उपभोक्तावादी जीवन शैली रही है। इस जीवन शैली में हमारा जोर अधिक से अधिक वस्तुओं के उपभोग पर होता है जो निर्माण से लेकर प्रयोग होने तक और उसके आगे अपशिष्ट बनने तक प्रकृति को नुकसान पहुंचाते हैं। प्रकृति को लेकर हमारा यह गैर जिम्मेदार रवैया एक दिन इस पूरी दुनिया को इंसानों के रहने के लायक नहीं छोड़ेगा। सकारात्मक राष्ट्रवाद की विचारधारा ऐसी स्थिति के आने से पहले ही हमें सचेत होने की बात करती है। सकारात्मक राष्ट्रवाद प्रकृति और मानवीय गतिविधियों के बीच एक संतुलन की जरूरत पर जोर देता है। यह संतुलन प्रकृति और मानव दोनों के अस्तित्व को बराबर का महत्त्व देते हुए सहअस्तित्व के सिद्धांत पर आगे बढ़ने की बात करता है।

मैं हमेशा कहता हूँ कि भारत न सिर्फ सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से एक विविधता वाला देश है बल्कि प्राकृतिक रूप से भी विविध विशेषताएं लिए हुए है। भारत जैसी प्राकृतिक विविधता दुनिया के बहुत कम देशों को नसीब हुई है। भारत में हिमालय जैसे पहाड़ी इलाके हैं तो नागपुर के पठारी इलाके भी हैं। गंगा-जमुना दोआब का उपजाऊ मैदान है तो थार का रेगिस्तान भी है। सिन्धु, गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कावेरी जैसी सदानीरा नदियाँ हैं तो बहुत सारे मौसमी झील और तालाब भी हैं। भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि एक ही समय में एक कश्मीरी ठण्ड से बचने के लिए अंगीठी से अपने शरीर को गर्म करता है तो उसी समय एक राजस्थानी अपनी बड़ी पगड़ी से चेहरे पर आ रही सीधी

धूप को रोकता है। जब पूरा मेघालय बारिश में डूबा होता है तब हरियाणा-पंजाब के आसमान में एक भी काला बादल नजर नहीं आता। जब सर्दियों के दिनों में गोवा के तट पर लोग सन बाथ ले रहे होते हैं ठीक उसी वक्त असम के चाय बागान में काम करने वाली एक मजदूर सूरज का इंतजार कर रही होती है।

हमारी यह प्राकृतिक विशेषता हमारे विकास के लिए अवरोध नहीं बल्कि एक अवसर है, बस जरूरत है इसके अनुरूप तकनीक की मदद से विकास करने की। सकारात्मक राष्ट्रवाद इस बात में यकीन करता है कि प्रकृति और उसकी विविधता को बरकरार रखते हुए भौगोलिक विशेषताओं के अनुरूप ऐसे उद्योग-धंधे और कल-कारखाने विकसित कर उस इलाके के लोगों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। इस तरह हम उस गैर जरूरी पलायन को भी रोकने में कामयाब होंगे जो रोजगार की तलाश में गाँवों से शहरों की तरफ होता है। इससे हम बड़े शहरों पर पड़ने वाले अतिरिक्त दबाव को कम कर सकते हैं जो वहाँ की प्रकृति, वहाँ के पर्यावरण के हक में है।

सकारात्मक राष्ट्रवाद सिर्फ व्यवस्था को ठीक करने की बात नहीं करता है बल्कि उसके साथ-साथ व्यक्ति और उसकी चेतना को भी सकारात्मक दिशा में बदलने की कोशिश करता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद के नजरिए से देखें तो प्रकृति की इस समस्या का समाधान सिर्फ व्यवस्था बदलने से नहीं होगा बल्कि व्यक्ति को अपने आचार-व्यवहार, रहन-सहन और जीवन पद्धति में भी बदलाव लाना होगा। हमें इस उपभोगतावादी संस्कृति के खिलाफ खड़ा होना होगा जो हमारी प्रकृति के अंधाधुंध दोहन पर टिका हुआ है। गांधी जी यूँ ही नहीं कहा करते थे कि "प्रकृति के पास हमारी सभी जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन है लेकिन वो हमारे लालच को पूरी नहीं कर सकता।" सकारात्मक राष्ट्रवाद, हमारी लालच, हमारी लिप्सा से जन्मे इस उपभोगवादी जीवन पद्धति के विपरीत प्रकृति और इंसान के सहअस्तित्व पर टिकी एक ऐसी जीवन पद्धति के निर्माण की वकालत करता है जो प्रकृति के हक में है, जो इंसानियत के हक में है।

11. भविष्य के भारत की बुनियाद : सकारात्मक राष्ट्रवाद

मानवीय सभ्यता के विकास में कई विचारधाराओं ने जन्म लिया जो इंसानी जिंदगी, समाज, देश और दुनिया को बेहतर करने का दावा करती रही हैं। वक्त बदलने के साथ इन विचारधाराओं के बदलाव की जरूरत महसूस होने लगी और पुरानी की जगह नई विचारधाराएँ आती रहीं। दुनिया भर में अलग-अलग वक्त में अलग-अलग विचारधाराओं का वर्चस्व रहा है। मसलन एक जमाना था जब दुनिया में सामंतवादी व्यवस्था का वर्चस्व था लेकिन वक्त के साथ यह विचारधारा भी मंद पड़ी और पूँजीवाद, राष्ट्रवाद, साम्यवाद जैसी नई विचारधाराओं ने जन्म लिया। पुरानी विचारधारा का मंद पड़ने और नई विचारधारा का जन्म लेने का यह क्रम यहीं खत्म नहीं हुआ है बल्कि आज भी अनवरत रूप से जारी है। भारत के सन्दर्भ में सकारात्मक राष्ट्रवाद की विचारधारा की जरूरत इस क्रम का नतीजा है।

सकारात्मक राष्ट्रवाद की विचारधारा का मूल तत्त्व एकता है। यह विचारधारा हजारों सालों से अर्जित हिन्दुस्तान की एका का जश्न मनाती है जबकि नकारात्मक राष्ट्रवाद अपनी नफरती सियासत से इस एका को तोड़ने की साजिश कर रहा है, लोगों को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा कर रहा है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की यह स्पष्ट समझदारी रही है कि आज जो अपनी सत्ता के लिए हिन्दू और मुस्लिम को आपस में लड़वा रहे हैं कल वो अपनी इसी सत्ता के लिए हिन्दुओं को भी आपस में लड़वाने से भी नहीं हिचकेंगे। इसीलिए राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए, भविष्य के भारत की बुनियाद को मजबूत करने के लिए हमें सकारात्मक राष्ट्रवाद को अपनाना होगा जो हमारी बहुलतावादी संस्कृति में यकीन करता है, जो मोहब्बत के आधार पर लोगों को जोड़ने में यकीन रखता है।

सकारात्मक राष्ट्रवाद संविधान के मूल्यों में अपनी गहरी आस्था रखता है साथ ही एक स्वस्थ और मजबूत लोकतंत्र के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आपसी संवाद की परम्परा और प्रतिरोध की संस्कृति को जरूरी मानता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की माने तो सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक न्याय को स्थापित किये बगैर एक मजबूत भारत की बुनियाद नहीं रखी जा सकती।

सकारात्मक राष्ट्रवाद व्यक्ति और व्यवस्था दोनों को बदलने की बात करता है। व्यवस्था तभी सुचारू रूप से काम कर सकती है जब व्यक्ति का मानस, उसकी सोच सही होगी। इसके लिए सकारात्मक राष्ट्रवाद भारत के ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्म की लम्बी विरासत से सीख लेते हुए आगे बढ़ने की बात करता है।

भारत एक जवां मुल्क है। सकारात्मक राष्ट्रवाद भारत की जवानी को राष्ट्र-निर्माण के इस मिशन में शामिल होने का आह्वान करता है। ऐसा नहीं है कि पहले इस देश के युवाओं ने देश की बेहतरी के लिए आवाज नहीं उठाई है। भारत की आजादी की लड़ाई हो, आपातकाल के दौरान खड़ा हुआ जेपी आन्दोलन हो या फिर भ्रष्टाचार के खिलाफ अन्ना आन्दोलन, युवाओं ने इन सबमें बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। लेकिन अफसोस कि इन आन्दोलनों के बाद पुराने घाघ सत्ताधारियों ने फिर से अपनी सत्ता स्थापित कर ली। इसीलिए सकारात्मक राष्ट्रवाद भारत के युवाओं को व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई के साथ-साथ एक नई व्यवस्था के निर्माण की तैयारी की भी बात करता है। बदलाव के इस मिशन में शामिल युवाओं के लिए विध्वंस और निर्माण दो अलग-अलग ध्रुव पर पलने वाला सपना नहीं बल्कि एक साथ चलने वाली वह प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य है - भेदभाव मूलक पुरानी व्यवस्था का विध्वंस और समतामूलक नई व्यवस्था का निर्माण। सकारात्मक राष्ट्रवाद के बुनियाद पर टिकी इस नई व्यवस्था का निर्माण ही आजादी के शहीदों के सपनों का भारत होगा, भविष्य का सशक्त भारत होगा।

❑❑❑

अध्याय
2

आज के दौर की विचारधारा

विचारधारा से संबन्धित बहस दुनिया में कई दशकों से हो रही है। आज हम एक ऐसे दौर में बैठे हुए हैं जहाँ पर पिछले कई सौ सालों के इतिहास में एक खास परिस्थितियों में कुछ विचाराधाराओं का जन्म हुआ। विचारधाराओं ने मानव जाति की प्रगति में एक मजबूत भूमिका निभाई है। हम लोगो के लिए पहले ये समझना बहुत जरूरी है कि विचारधारा क्या होती है? विचारधारा किसको कहते हैं?

अलग-अलग समय पर अलग-अलग समाज, देश, सभ्यताओं की विचारधारा अलग-अलग रही है। ऐसा नहीं है कि मानव की उत्पत्ति से लेकर आज तक एक ही विचारधारा चलती रही है। एक खास समय में खड़े होकर अपने पहले की घटनाओं को देखना, इतिहास के बारे में हमारा मूल्यांकन और दृष्टिकोण और भविष्य के बारे में समाधान का जो रास्ता होता है, इनको मिलाकर विचारधारा बनती है। जिस रास्ते से भविष्य की समस्याओं के समाधान की हम परिकल्पना करते हैं, उसको हम विचारधारा कहते हैं।

आज दुनिया में पहली बार विचारधारा का प्रश्न नहीं आया है। वह इसलिए कि दो सौ सालों में जिसको हम आधुनिक युग कहते हैं, विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास के साथ-साथ दुनिया में दो तरह की विचारधाराओं का जन्म हुआ। जिसमें से एक को हम पूंजीवादी विचारधारा कहते हैं और दूसरे को साम्यवादी विचारधारा। इन्हें और दूसरे नामों से भी जानते हैं। एक को दक्षिणपंथी विचारधारा कहते हैं और एक को वामपंथी विचारधारा। इनके बीच की एक और समस्या है। वह यह है कि दोनों अपने-अपने तरीके से राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की बात करते हैं। लेकिन मोटे तौर पर पिछले दो सौ साल में विचारधाराओं का जो जन्म हुआ, वह दो खेमों में बंट गया। पूंजीवादी विचारधारा जिसको दक्षिणपंथी विचारधारा कहते हैं और दूसरा साम्यवादी विचारधारा जिसको वामपंथी विचारधारा कहते हैं।

आज आमतौर पर विचारधारा का मतलब या तो दक्षिणपंथी होना है या फिर वामपंथी। अगर आप दक्षिणपंथी या वामपंथी नहीं हैं तो आपकी विचारधारा को लेकर सवाल पूछे जाते हैं कि आपकी विचारधारा क्या है। उनके लिए ये समझना बहुत मुश्किल होता है कि इन दो खेमों के अलावा भी कुछ सोचा, समझा और किया जा सकता है। इसलिए उनकी तरफ से ये सवाल आता है।

लेकिन मैं आप लोगों को थोड़ा पीछे ले जाना चाहता हूँ। जब ये दक्षिणपंथी और वामपंथी विचारधारा नहीं थी, तब भी व्यक्ति था। जब ये विचारधाराएं नहीं थीं, तब भी लोग थे, समाज था, व्यवस्था थी, दुनिया थी और अपने तरह से आगे बढ़ रही थी। आज हमारे ही सामने केवल ये संकट नहीं है, पूरी दुनिया के सामने और पूरी मानवीय सभ्यता के सामने ये संकट खड़ा हुआ है। क्योंकि जो पूंजीवादी विचारधारा का विकास हुआ, आज वह सर्वशक्तिशाली राष्ट्रों में एक साम्राज्यवादी विचारधारा का रूप ले चुका है। साम्राज्यवादी मतलब उनके पास दुनिया में सबसे ज्यादा धन है, लेकिन फिर भी संतुष्टि कम है। वे दूसरे देशों की प्राकृतिक, मानवीय सम्पदा को लूटकर अपनी ताकत को और बढ़ाना चाहते हैं।

दूसरी जो विचारधारा है, साम्यवादी विचारधारा, उसने भी प्रयोग किया। बहुत सारी चीजों का समाधान भी किया। लेकिन आज जो दुनिया के सामने चुनौती है, उस चुनौती का हल करने में अब यह विचारधारा छोटी पड़ती जा रही है। साम्यवादी विचारधारा का जो मॉडल था (सोवियत संघ, रूस का मॉडल) वह विखंडित हुआ। इसलिए कि वर्तमान समस्याओं के समाधान में वो विचारधारा छोटी पड़ गयी है। एक समय में एक चीज हमारे लिए बहुत उपयोगी होती है। लेकिन पूरी जिन्दगी उपयोगी रहे, ऐसा संभव नहीं है। उदाहरण के लिए, बचपन में जब हम सब छोटे -छोटे थे और जब पहली बार माँ-बाप हमारे लिए चड्ढी और बनियान खरीदकर लाए थे तो उस समय छोटी - सी चड्ढी और बनियान हमारे लिए बहुत उपयोगी थी, जरूरी थी, खूबसूरत थी। लेकिन हमारी उम्र बढ़ने के बाद, आज माँ को कितना भी प्यार हो आपसे, अगर वह पुरानी चड्ढी - बनियान ला करके आपको पहनाने की कोशिश करे तो शायद न तो आपको अच्छा लगेगा, न समाज को अच्छा लगेगा और न वह हमारी जरूरतों को पूरा कर सकता है। ऐसे ही विचारधाराओं का प्रश्न है।

आज हमारा देश, समाज और ये दुनिया जिन समस्याओं से जूझ रही है, उन संकटों के समाधान का रास्ता, मैं बहुत ही जिम्मेदारी से कहना चाहता हूं, न तो समाजवादियों के पास है और न ही पूंजीवादियों के पास है। रास्ता नया ढूंढ़ना है। नए दौर के मुताबिक। और यही चुनौती आज देश और पूरी दुनिया के विचारकों के सामने है। इन चुनौतियों को हमने स्वीकारा है और सकारात्मक राष्ट्रवाद की विचारधारा को हम दुनिया के सामने लाए हैं।

आमतौर पर कई लोग सोचते हैं कि विचार पहले बनता है और व्यवहार को हम बाद में समझते हैं। ये सच है लेकिन आधा सच है। विचार जो है वह व्यवहार से बनता है। जो घटनाएं घट रही होती हैं, उन घटनाओं को देखते-देखते, मूल्यांकन करते – करते एक दिन एक इंसान का दिमाग उसको सूत्रबद्ध कर देता है। अनुभव से सीखता है। और उसको एक विचार में पिरो देता है।

न्यूटन ने एक सिद्धांत दिया। न्यूटन का सिद्धांत उसके दिमाग से नहीं पैदा हुआ। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत जिसको हम सब जानते हैं, वह सिद्धांत पहले से दुनिया में मौजूद था। न्यूटन ने उसे व्यवहार में देखा। जो देखा उसको देखते – देखते उसने एनालाइज किया कि ये ऐसा है, इसका ये कारण है और उससे एक सिद्धांत पैदा हुआ। व्यक्तिगत रूप से मैं ये मानता हूँ कि पूरी दुनिया के अंदर जो संकट पैदा हुआ है, उस संकट के समाधान का रास्ता पूरी दुनिया ढूंढ रही है। क्योंकि पूंजी के विकास का चरमोत्कर्ष हो चुका है। आज अमेरिका दुनिया में सर्वोच्च पूंजी वाला देश है। लेकिन वहाँ पर अब मंदी आ गई, यह सोचने वाली बात है कि जिसके पास सबसे ज्यादा पैसा है, वह मंदी के दौर से गुजर रहा है।

पूंजीवाद ने किसी भी देश कि गरीबी की समस्या का समाधान नहीं निकाला। एक देश जितना ज्यादा पूंजीवादी होता है, उतनी ही ज्यादा उस देश में गरीबी, बेरोजगारी और असमानता देखी जा सकती है। पूंजीवादी विचारधारा के तहत दुनिया में लगातार आर्थिक संकट देखा जा रहा है। चाहे वो 1970 का तेल संकट हो या 2008 की वैश्विक आर्थिक महामंदी। पूंजीवादी विचारधारा में अमीर और अमीर होता जा रहा है और गरीब की हालत बद से बदतर होती दिखाई दे रही है।

इसी बीच साम्यवाद का जो दूसरा मॉडल खड़ा हुआ, वह ऐसा खड़ा हुआ कि बहुत जल्दी विखंडित हो गया। साम्यवाद के गठन और अनुप्रयोग में समस्याएं ऐसी थीं कि कई राष्ट्र जो साम्यवादी थे, आज की दुनिया में या तो भंग हो गए हैं या उन्होंने थोडा पूंजीवाद की ओर रुख मोड़ लिया है। आज के समय में हम साम्यवादी विचारधारा वाले देशों के गिने-चुने उदाहरण ही देख सकते हैं। साम्यवादी विचारधारा की गिरावट के पीछे मुख्य कारण पूंजीवादियों के साथ प्रॉफिट के लिए कंपिटीशन को माना जाता है। हम एक पूंजीवादी दुनिया में रहते हैं, और यह सच है। क्या इसका मतलब है कि हमें इस विचारधारा को स्वीकार करना होगा और इसके साथ ही आगे बढ़ने की कोशिश करनी होगी? बिल्कुल नहीं। हमें एक विचारधारा की खोज करने की आवश्यकता है जो आज की दुनिया की समस्याओं का हल निकाल सके। मैं आपको पूरी जिम्मेदारी के साथ बताना चाहूँगा कि न सिर्फ हमारे देश बल्कि दुनिया की समस्याओं का समाधान सकारात्मक राष्ट्रवाद की विचारधारा के पास है।

दूसरी बात, जिसकी तरफ मैं आना चाहता हूँ, वह है व्यवस्था। एक व्यवस्था हमारे परिवार की है, जिस परिवार में हम रहते हैं। एक व्यवस्था हमारे समाज, राज्य और देश की है। लेकिन ये सब व्यवस्थाएं छोटी हैं। इन सभी व्यवस्थाओं पर पूरी दुनिया के अंदर जो व्यवस्था आज काम कर रही है उसका असर है। आज हम क्या बोलेंगे? क्या करेंगे? हम नहीं, वे तय करते हैं। पॉलिटिकल वैज्ञानिक इसको कल्चरल हेगेमनी भी कहते हैं। जब ये देश गुलाम था तो हमारा दिमाग आजाद था। और जब देश आजाद हो गया तो हमारा दिमाग गुलाम बनता जा रहा है। हम स्वतंत्र रूप से सोच नहीं सकते।

आज दुनिया के अंदर तीन ताकतवर व्यवस्थाएं हैं। एक व्यवस्था का नाम है- वर्ल्ड बैंक। दूसरी व्यवस्था का नाम है- इंटरनेशनल मोनिटरी फण्ड (IMF)। और तीसरी व्यवस्था है जेनेरल अग्रीमेंट ऑफ ट्रेड एंड टैरिफ (GATT) जिसको हम गैट बोलते हैं।

आज भी भारत का किसान और मजदूर आत्महत्या क्यों कर रहा है? आत्महत्या करने के मुख्य कारण हैं, जेनेरल अग्रीमेंट ऑफ ट्रेड एंड टैरिफ के तहत एक विकसित देश दस समझौते के तहत जिस पर भारत भी हस्ताक्षर कर

चुका है, अपने किसानों को बीज,खाद, दवा, पानी, बिजली पर 26 प्रतिशत सब्सिडी दे सकते हैं। लेकिन जो गरीब और विकासशील देश हैं ये केवल दस से तेरह प्रतिशत दे रहे हैं। आज ये भारत नहीं तय कर सकता है। आज ये अमेरिका और उससे संबन्धित जो संस्थान हैं वे तय करते हैं। छोटे-छोटे उद्योग और कारखाने हजारों की तादाद में इस देश में काम करते हैं। इन्हीं छोटे-छोटे उद्योग और कारखानों के दम पर अमेरिका की आर्थिक मंदी के बाद भी हमारा देश बच गया।

दूसरा कारण मैं आपको बताना चाहूँगा, वह है स्पेशल इकोनॉमिक जोन और इंडस्ट्रियल कॉरिडोर। इनकी वजह से भारत, जो एक श्रमिक बाहुल्य देश है, पूंजी और टेक्नोलॉजी से बनने वाली वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है। जिससे बेरोजगारी का संकट बढ़ रहा है। सरकार अपनी नीतियाँ जैसे जीएसटी, निजीकरण भारत के लोगों के लिए नहीं बना रही है। यह वर्ल्ड बैंक और आईएमएफ का एजेंडा है। यह नव-उदारतावाद का एजेंडा है। हमारी नीतियां मुट्ठी भर लोगों के फायदे को ध्यान मे रखकर बनाई जा रही हैं। उनको दुनिया के मार्केट पर कब्जा करना है। और उनके रास्ते में जो बाधाएं आती हैं, उनको ये जोर-शोर से ढोल-नगाड़े के साथ अपने रास्ते से हटा देते हैं। किसान और मजदूर परेशान तो पहले से ही थे पर मोदी सरकार द्वारा किसानों व मजदूरों के हितों के नाम पर बनाये गए नए कानूनों ने उन्हें और परेशानी में डाल दिया है।

उदाहरण के लिए आपको बता दूँ - बहुत सारे इतिहासकार इस बात को मानते हैं और ये सच भी है। अगर आपसे एक सीधा सवाल पूछा जाए -

भारत में रेल कौन लेकर आया?

जवाब मिलता है - अंग्रेज लेकर आए।

किस लिए लेकर आए? मालगाड़ी तो आई पर किस लिए आई? भारतीयों की सुविधा के लिए, भारत के औद्योगिक विकास के लिए?

नहीं!

भारत में औद्योगिक विकास से पहले जब दुनिया में औद्योगिक क्रांति हुई, एक समय ऐसा था कि पूरे यूरोप में अंधकार युग था लेकिन भारत के अंदर

टेक्नोलॉजी काफी विकसित थी, यह अंग्रेजों के आने से पहले की बात है। ढाका का नाम सुना है? आज बांग्लादेश की राजधानी है। उस ढाका में मलमल बनता था, कहते हैं वह मलमल का कपड़ा जिसे भारत की टेक्नोलॉजी इतना महीन बनाती थी कि एक थान मलमल का कपड़ा माचिस की डिब्बी में बंद हो जाता था। सोचिये कैसी तकनीक रही होगी हमारी? अंग्रेजों का इस दुनिया में राज आया और चला गया। लेकिन ढाका का वह मलमल अंग्रेज नहीं बना पाये। अंग्रेजों ने ढाका के मलमल बनाने वाले कारीगरों के अँगूठों को कटवा दिया था।

हाल ही कि एक स्टडी बताती है कि अंग्रेजो ने भारत से लगभग 50 हजार ट्रिलियन रुपया लूटा था जिसका हिसाब आज भी दुनिया लगा रही है। हमारे उद्योग-धंधे ऐसे ही नहीं नष्ट हुए। अंग्रेजों के द्वारा एक-एक करके खत्म किये गये। और जब हमारे उद्योग-धंधे खत्म हो गए तब इंग्लैंड की क्रांति के बाद जो वहाँ कपड़ा बनता था उसके लिए कपास हमारे देश से ले जाते थे और वहाँ से कपड़ा बनाकर लाते थे। उसे बेचने के लिए आवागमन का साधन चाहिए था, इसलिए अंग्रेज उस समय मालगाड़ी लेकर आये। इसी तरह हमारे देश की अर्थव्यवस्था को खत्म करने के लिए आज जीएसटी और इंडस्ट्रियल कॉरिडोर आया है ना कि भारत की अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के लिए।

नब्बे के दशक का भारत अलग था और उसके बाद का भारत एकदम अलग है। नब्बे के दशक के बाद अंतर्राष्ट्रीय दबाव और भारत के प्राकृतिक संसाधन पर पूंजीवादियों का कब्जा तेजी के साथ बढ़ा है। आज जैसे बोतल में पानी बिकता है वैसे ही इस देश में नदियां बेची जा रही हैं। कई नदियां बिक चुकीं। जल, जंगल और जमीन को बड़े स्तर पर कॉरपोरेट्स को बेचा जा रहा है।

दोस्तों इस देश को कुदरत ने बहुत कुछ दिया है। जितनी उपजाऊ जमीन भारत के पास है उतनी दुनिया के कम देशों के पास है। जितनी नदियां हमारे देश में बहती हैं, उतनी नदियां बहुत कम देशों में हैं। और जितना मैन पावर भारत के पास है उतना बहुत कम देशों के पास है। दिमाग तो कुदरत ने इतना दिया है कि दुनिया को आगे बढ़ाने में भारतीयों कि अहम भूमिका रही है। 1947 में देश आजाद हुआ, अंग्रेजों की सत्ता गई, लेकिन आज भी हमारे देश में नब्बे

प्रतिशत वही व्यवस्था चल रही है, जो अंग्रेजों ने अपनी हुकूमत बचाने के लिए बनाई थी।

मैं दिल्ली सरकार के संचालक के अनुभव से आपसे कहना चाहता हूँ कि ये ब्यूरोक्रेसी का पूरा तन्त्र जो अंग्रेजों ने खड़ा किया वह जनता के हित के लिये कतई नहीं था। आज भी मैं अपनी आँखों से देखता हूँ कि अगर आम आदमी के काम का नाम ले लो तो अधिकारीयों की भौहें चढ़ जाती हैं, किसी अधिकारी को जनता का काम नहीं करना है। दो-चार ईमानदार और अच्छे अधिकारी हैं जो देश प्रेमी हैं, जनता से मोहब्बत करते हैं। जो अधिकारी जनता के लिये काम करते हैं इस सिस्टम में उन्हें उपेक्षित समझा जाता है। इस सिस्टम का प्रतिनिधि वह है जो सबसे ज्यादा जनता को परेशान करके रखे। जितना वह फाइल घुमाएगा, वह उतना ही स्मार्ट अधिकारी है।

यह मानसिकता की कमी नहीं है, व्यक्तिगत कमी नहीं है, उस सिस्टम की कमी है, यह विचारधारा की कमी है। चाहे वह हमारी विधायिका हो, कार्यपालिका हो या फिर न्यायपालिका हो। इस देश का सबस बड़ा न्याय देने वाला संस्थान है – सर्वोच्च न्यायालय। अगर किसी को न्याय की जरूरत पड़ जाए और ऐसी स्थिति हो कि हमें सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर करना हो तो नब्बे प्रतिशत लोगों के लिए ये असंभव काम है। हम न्याय नहीं पा सकते। जा ही नहीं सकते। तो ये जो सिस्टम है इस देश के अंदर, इसे बदलने की चुनौती हम लोगों के सामने है। आजादी की लड़ाई के दौरान लोगों का ये सपना था कि हम एक नई व्यवस्था को लाएंगे।

एक व्यवस्था को बदलकर नई व्यवस्था को लाना, इसी का नाम क्रांति है। इस क्रांति के लिए आजादी की लड़ाई चल रही थी। 1947 में खास परिस्थितियों में देश को आजादी मिली। अंग्रेजों के राजनीतिक तंत्र से देश आजाद हुआ लेकिन उनके आर्थिक और प्रशासनिक तंत्र से देश आजाद नहीं हुआ। और उसका परिणाम ये है कि हम आज भी उन चीजों को झेल रहे हैं। कहने को तो आजादी के बाद भारत एक मिश्रित अर्थव्यवस्था था लेकिन भारत के आर्थिक विचारधारा पूंजीवादी ही थी। अगर आप देश में नई व्यवस्था को लाना चाहते हैं तो इस व्यवस्था को बदले बगैर कोई रास्ता नहीं है।

सवाल यह है कि हमारी अर्थनीति क्या होनी चाहिए? सकारात्मक राष्ट्रवाद एक नया वैकल्पिक आर्थिक मॉडल देश के सामने प्रस्तुत करता है।। इस देश में एक अर्थव्यवस्था का मॉडल रहा है – पूंजीवादी व्यवस्था का मॉडल। जिसमें पूंजी सर्वोच्च होती है और श्रम तथा समाज नगण्य होते हैं। अर्थव्यवस्था का दूसरा जो मॉडल आया वह था साम्यवाद का मॉडल, जो पूंजीपति वर्ग के खिलाफ होता है।

सकारात्मक राष्ट्रवाद का मानना है कि हमारे देश को एक नए तरह की अर्थव्यवस्था की जरूरत है। विकास के लिए पूंजी और श्रम दोनों चाहिए। एक ऐसी अर्थव्यवस्था की जरूरत है जहाँ श्रम के प्रति भी उतनी ही जिम्मेदारी और सम्मान हो, जितना पूंजी के प्रति। क्योंकि दोनों के बगैर नया उत्पादन नहीं हो सकता है। चाहे आप टेक्नोलॉजी को कहीं भी पहुंचा दीजिए, पूंजी श्रम की जगह नहीं ले सकती और श्रम पूंजी की जगह नहीं ले सकता। हमें यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि श्रमिक को उसका सही मूल्य मिलना चाहिए जो वह उत्पादित करता है। धन को पूंजीपति और श्रमिक के बीच समान रूप से वितरित किया जाए।

भारत में धन कि कमी नहीं है लेकिन भारत की जनता के हाथ में खर्च करने के लिए धन की काफी कमी है। मैं आपको एक उदाहरण देकर बताना चाहता हूँ जैसे जब हम लोगों ने दिल्ली में न्यूनतम मजदूरी बढ़ाई तो कई दुकानदार, कई फैक्ट्री के मालिक हमारे पास आए, दिल्ली के लोगों से वार्ता हुई। जो लोग विरोध करने वाले हैं, वे यह कहते हैं कि मिनिमम वेज बढ़ने से उद्योग ठप्प पड़ जाएंगे। व्यापार ठप्प हो जाएगा। कौन काम करेगा? तात्कालिक तौर पर थोड़ी दिक्कत आ सकती है। लेकिन आज जहाँ भारत खड़ा है उसका एक ही रास्ता है कि बाजार व्यवस्था को अगर विकसित करना है तो उसमें खरीद और बिक्री दोनों अनिवार्य हैं। खरीद-बिक्री के बगैर बाजार व्यवस्था आगे नहीं बढ़ सकती। और इसीलिए जब हम कह रहे हैं कि मजदूरों की मजदूरी बढ़नी चाहिए और किसानों की फसल का दाम बढ़ना चाहिए तो उसके पीछे पूरा सोचा-समझा हुआ अर्थशास्त्र है।

ये बात बिना सोचे हम नहीं कह रहे हैं। भारत को अगर आर्थिक महाशक्ति बनाना है तो भारत की जो बाजार की शक्तियां हैं, उन्हें मजबूत करना होगा। भारत

की नब्बे प्रतिशत आबादी कौन है? किसान हैं, मजदूर हैं। मार्केट किनसे चलती है- खरीदार और दुकानदार से। जहाँ खरीदारी ज्यादा होती है, वहाँ दुकानदारी ज्यादा होती है। अगर मजदूर के पास क्रय-शक्ति नहीं है तो दुकान से कुछ खरीदने जायेगा? अगर किसान के पास क्रय-शक्ति नही होगी तो उसका बच्चा रोता रहेगा पर वह उसको टॉफी तक नहीं दिला पायेगा।

नब्बे प्रतिशत आबादी का मतलब होता है -120 करोड़ से अधिक। उदाहरण के लिये मान लो अगर 100 करोड़ मजदूर और किसान इस देश में रहते हैं और अगर उनकी क्रय-शक्ति बढ़ती है तो वे सामान लेने कहाँ जायेंगे? बाजार। और जब सामान लेने बाजार में जायेंगे जैसे कि भारत में जब ईद, दीवाली, होली होती है तो हमारा व्यापारी व्यस्त हो जाता है। क्यों हो जाता है। वह इंतजार करता है कि ईद, दीवाली, होली आएगी। क्योंकि उस समय सब लोग अपने साल भर के कटौती का जो पैसा होता है, उसे मार्केट में ले जाते हैं। अगर उनके पास बारह मास पैसा हो तो उन्हें भी अच्छा लगता है।

ऐसा नहीं है कि उनको अच्छा लगता है कि एक बनियान को वे तीन साल तक पहनते रहे। उनको अच्छा नहीं लगता। लेकिन उनकी ऐसी आर्थिक स्थिति है जिसके कारण वो मजबूर हैं। अगर उनकी आमदनी बढ़ा दी जाए तो मार्केट में बिक्री बढ़ जाएगी। यदि मार्केट में बिक्री बढ़ जाएगी तो देश का दुकानदार और व्यापारी आर्थिक रूप से मजबूत होगा। और अगर मार्केट में बिक्री बढ़ेगी, व्यापारी अपने घर से तो सप्लाई करेगा नहीं। माल कहाँ से आएगा? उद्योग से माल आएगा। बनियान किसान तो पैदा करेगा नहीं। वह तो उद्योग से पैदा होगा। जब डिमांड बढ़ेगी तो उद्योग में उत्पादन बढ़ेगा। और जब उत्पादन बढ़ेगा तो उद्योग मजबूत होगा। पूंजी हमारी मजबूत होगी। लेकिन इसमें से जो सबसे बड़ी चीज है, अगर डिमांड बढ़ेगी, क्रय-शक्ति बढ़ेगी तो बिक्री बढ़ेगी। बिक्री बढ़ेगी तो व्यापार मजबूत होगा। व्यापार मजबूत होगा तो उद्योग मजबूत होगा। और उद्योग मजबूत होगा तो रोजगार बढ़ेगा। अर्थशास्त्र में इस पूरी प्रक्रिया को इन्वेस्टमेंट मल्टीप्लायर भी कहा जाता है।

देश का नौजवान आज जो बेरोजगारी की हालत में घूम रहा है, बेरोजगारी को खत्म करने का सिर्फ एक रास्ता है कि इस देश के मजदूरों और किसानों की

क्रय-शक्ति बढ़ाओ। क्रय-शक्ति बढ़ाने के लिए भारत को राष्ट्रीय रोजगार नीति बनाने और लागू करने की सख्त जरूरत है। तभी रोजगार बढ़ेगा और नौजवान खुशहाल होंगे। जब नौजवान खुशहाल होगा तो राष्ट्र खुशहाल होगा। इसके अलावा दुनिया के पास और कोई रास्ता नहीं है। हमें बैलेंस थ्योरी की तरफ जाना पड़ेगा। इसको कहते हैं संतुलन सिद्धांत। जिंदगी में बैलेंस लाओ और अर्थव्यवस्था में भी। भारत के महाशक्ति बनने का ये रास्ता है। हमारी आबादी जिसे आज अभिशाप समझा जाता है अगर उसकी क्रय-शक्ति बढ़ा दो तो वह भारत के लिए वरदान बन सकती है। भारत महाशक्ति बन सकता है। एक बड़ी अर्थव्यवस्था बन सकता है। भारत दुनिया में सबसे ज्यादा युवा आबादी वाला देश है। जहाँ दुनिया में सभी देशों के नागरिकों की औसतन आयु बढ़ रही है वहीं दूसरी तरफ भारत जनसांख्यिकीय लाभांश से गुजर रहा है। जनसांख्यिकीय लाभांश जनसंख्या ढाँचे में बढ़ती युवा एवं वर्किंग पॉप्युलेशन (15 वर्ष से 64 वर्ष आयु वर्ग) और घटती निर्भर जनसँख्या (15 वर्ष से कम और 64 वर्ष से ज्यादा) के परिणामस्वरूप उत्पादन में बड़ी मात्रा के बढ़ोतरी को प्रदर्शित करता है।

आखिरी बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हम सब का लक्ष्य इस देश में क्रांति के माध्यम से व्यवस्था को बदलकर नई व्यवस्था को बनाना होना चाहिए। भारत के हजारों बेटे-बेटियाँ, जो प्रतिभा रखने के बावजूद इस देश को छोड़कर दुनिया में कहीं और जाकर अपनी जिंदगी गुजार रहे हैं, उनका भी सपना है कि माँ भारती एक दिन ऐसी व्यवस्था बनाएगी कि उन्हें उनकी प्रतिभा को स्थापित करने का अवसर इसी भारत में मिलेगा। दुनिया में भारत एक नए तरह का मापदंड और शक्ति लेकर पैदा होगा। हम सबको उस सपने की ओर अपने कदम बढ़ाने चाहिए। आज जिस लक्ष्य की तरफ हम बढ़ रहे हैं, उसके बीच बड़े अवरोध हैं। दो पहाड़ हैं जो इस देश में क्रांति को होने से रोकते हैं। बदलाव होने से रोकते हैं। एक पहाड़ का नाम है कांग्रेस पार्टी और दूसरे पहाड़ का नाम है भारतीय जनता पार्टी। इस देश कि जनता ने एक पहाड़ यानि कांग्रेस को तो उखाड़ कर फेंक दिया है।

भाजपा इस गलतफहमी में है कि ये देश उनके साथ खड़ा है। ये देश इंतजार कर रहा है। पंद्रह लाख के झूठे वादे के बाद इंतजार कर रहा है। नोटबंदी से

सड़क पर मरने के बावजूद इंतजार कर रहा है। प्रवासी मजदूरों को नंगे पाँव, सैकड़ों-हजारों किलोमीटर घर जाते देखने के बाद इंतजार कर रहा है, बेरोजगारी की मार के बाद भी इंतजार कर रहा है और सब सरकारी कंपनियों को निजी कंपनियों के हाथो बिक जाने के बाद भी अभी इंतजार कर रहा है। सिर्फ उस पल का इंतजार कर रहा है कि इस देश में ऐसी ताकत पैदा हो जो इसको उखाड़ के फेंक दे। सिर्फ उस दिन का इंतजार है जिस दिन आप ये एहसास करा सको इस देश को कि आप भाजपा के पहाड़ को उखाड़ कर फेंक सकते हो। क्योंकि देश अराजकता नहीं चाहता है। देश नहीं चाहता कि लोगों ने कांग्रेस को उखाड़ कर फेंक दिया और भाजपा को भी उखाड़ कर फेंक दे और देश में शून्यता पैदा हो जाये। ये देश नहीं चाहता।

देश सक्षम और सफल विकल्प का इंतजार कर रहा है। देश को सकारात्मक राष्ट्रवाद की वैकल्पिक विचारधारा कि जरूरत है। लोगो को उम्मीद है कि यह देश विकसित होगा। हमारे सफल होने के लिए दो चीजों की जरूरत है। हमारी संगठनात्मक और विचारधारात्मक ताकत बड़ी हो। अब जो आगे की लड़ाई है वह लंबी लड़ाई है। उसके लिए यदि आपका दिमाग मजबूत नहीं रहेगा तो दिल को संभालना मुश्किल होगा। इसी वैचारिक लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए देश की बात फाउंडेशन का गठन हुआ।

दुनिया की ताकत किस स्तर पर है और क्या चाहती है? भारत की व्यवस्था कैसी है? उसका संचालन कैसे होता है?और नई व्यवस्था कैसे बनानी है? इन सब चीजों को भी सोचना समझना पड़ेगा। लेकिन एक बात को जरूर समझना पड़ेगा और लोगों को भी समझाना पड़ेगा कि आज के समय में भाजपा द्वारा राष्ट्रवाद का सिर्फ ढोंग खड़ा किया जा रहा है। यह छोटी सी बात लोगो को बुरी लग जाती थी। मनमोहन सिंह ने इस देश को 25 प्रतिशत गुलाम बनाया। हमारी प्राकृतिक और मानवीय संपदाओं को बेचा। औड़ी-कौड़ी दाम पर बेचा। ये तो छोटी बात है। विकास के नाम पर नरेंद्र मोदी ने इस देश में सिर्फ नफरत का बीज बोया है। हिन्दू-मुस्लिम लड़ाई की आड़ में सब सरकारी संस्थानों को निजी कंपनियों को बेचा जा रहा है।

अंग्रेजों ने पूरी एड़ी-चोटी लगा दी भारत-पाकिस्तान के बंटवारे में कि भारत में केवल हिंदू रह जाएं और पाकिस्तान में केवल मुसलमान। अंग्रेजों की तूती बोलती थी उस समय। वे भी सारे मुसलमानों को भारत से पाकिस्तान नहीं भेज पाए। ये भारत की तासीर में है। भाजपा और आर.एस.एस. जैसे सैकड़ों संगठन भी लग जाएंगे तब भी हमारी आत्मा को नहीं खत्म कर पाएंगे। इसके लिए सजग रहना जरूरी है।

चिंता की बात ये है कि ये लोग राष्ट्रवाद के नाम पर, देश के नाम पर, इस देश को 100 प्रतिशत गुलाम बना रहे हैं। बेचने जा रहे हैं। ये राष्ट्रवाद की बात इसीलिए बोलते हैं क्योंकि हमारी एक मानसिकता है कि अगर मुसलमान-मुसलमान को, हिंदू-हिंदू को कुछ भी बोल दे तो दंगे नहीं होंगे। लेकिन अगर मुसलमान इतना सा भी हिंदू को कुछ बोल दे या हिंदू मुसलमान को कुछ बोल दे तो ये दंगा खड़ा कर देते हैं। इसलिए कांग्रेस वो काम करती थी तो शोर बहुत मचता था। आज जब ये राष्ट्र-राष्ट्र कहते हुए राष्ट्र को गिरवी रख रहे हैं तब लोगो को पता नहीं चल पा रहा है। ये इनकी देशभक्ति है। आज इस देश में जितने फर्जी देशभक्त हैं, अगर उनमें से कोई आपको गद्दार बोले तो समझ जाना कि आपकी देशभक्ति जिंदा है। आज के हालात 70 के दशक की इमरजेंसी से भी बुरे हैं जहाँ सरकार के खिलाफ आवाज उठाने वाले हर आदमी पर मुकदमा ठोक दिया जाता है। आज के समय दाभोलकर, पंसारे, कलबुर्गी और गौरी लंकेश को मार दिया जाता है क्योंकि वे सरकार के खिलाफ आवाज उठाते थे। हालात ऐसे बन गए हैं कि आने वाले समय में हर देशभक्त के ऊपर देशद्रोह का मुकदमा चलेगा। हमें याद रखना होगा भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव के ऊपर अंग्रेजों द्वारा देशद्रोह के मुकदमे चलाने से उनकी देशभक्ति कम नहीं हो गयी थी।

भाजपा के विरोधी होने के नाते हमें उसका विरोध नहीं करना है और न ही कांग्रेस के विरोधी होने के नाते हमें उसका विरोध करना है। हमें इन पॉलिटिकल पार्टियों की विचारधारा का विरोध करना है। कांग्रेस पूंजीवादी विचारधारा के हाथों देश को बेचने का काम कर रही थी और भाजपा ने राष्ट्रवाद का मुखौटा पहनकर कांग्रेस के काम को आगे बढ़ाया है। अंग्रेजों ने जिस तरह मुस्लिम लीग और आर.एस.एस. के द्वारा हमारी जेहनियत को तोड़ने का काम किया। आज सोची-समझी

रणनीति के तहत अमेरिका और इजराइल की जो साम्राज्यवादी ताकतें हैं वे इस देश को गुलाम बनाने के लिए नकारात्मक राष्ट्रवाद की विचारधारा को बच्चे-बच्चे के दिमाग में डालना चाहते हैं। इन फर्जी राष्ट्रवादियों की विचारधारा को हमें जनता के दिमाग से निकालना पड़ेगा। और उसके लिए आप से ही ताकत आनी चाहिए। और ये सिर्फ सड़क पर आंदोलन से नहीं हो सकता है। इसके लिए हमें भी एक वैचारिक फोर्स तैयार करनी पड़ेगी। एक आइडियोलॉजिकल टीम तैयार करनी पड़ेगी जो ठंडे दिमाग से, व्यवस्थित तरीके से सोच-समझ के सच्चाई लोगों को बता सकें।

क्योंकि एक झूठ को सौ बार बोलो तो लोग सच मान लेते हैं। मेहनत जरूर है पर इस मुल्क से मोहब्बत है, इसके प्रति ईमानदारी है और इसके प्रति समर्पण है तो शॉटकर्ट अब हमारे पास नहीं है। नए भारत के निर्माण के लिए हमें लोगों की सोच को बदलना पड़ेगा। उनके मन में जो जहर घोला जा रहा है उसे साफ करना पड़ेगा। उसके अलावा कोई रास्ता नहीं है। सोच को हमें बदलना है। नहीं तो छोटी-छोटी चीजों के लिए ही हम अपनी एनर्जी को खत्म कर देंगे।

राष्ट्र की ऊर्जा को राष्ट्र के काम में लगाने की जिम्मेदारी हम सबके कंधों पर है। हमे यहाँ से जिम्मेदारी लेनी है। और हमें उम्मीद है कि हम व्यवस्थित तरीके से, आधुनिक तरीके से, ठंडे दिमाग से पूरा क्रम खड़ा करेंगे। देश की बात फाउंडेशन का कोई भी टीम मेम्बर हो, रहे वह कहीं पर भी पर विचार उसके वैसे ही होने चाहिए जैसे आपके हैं। सोच में कमजोरी नहीं रहनी चाहिए। वह एक घंटा समय देता हो या 24 घंटे देता हो। समय की कमी हो या संसाधन की। लेकिन विचारधारा में उसकी उतनी ही ताकत चाहिये। विचार की ताकत। विचार के आधार पर संगठन की ताकत। हमे विचार के आधार पर पूरे देश में फौज पैदा करनी है।। और जिस दिन ये फौज पैदा हो जाएगी, यकीन मानो सब कुछ बदलने का रास्ता खुल जाएगा।

❑❑❑

अध्याय
3

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और बदलाव की जरूरत

भारत ही नहीं बल्कि दुनिया भर के लगभग सभी समाजों में महिलाओं की स्थिति एक दोयम दर्जे के इंसान के रूप में रही है। उन्हें मर्दों के मुकाबले कमतर आंका जाता है। दुनिया भर के अधिकतर समाजों में महिलाओं को कई तरह के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। महिलाओं को आधी आबादी कहा जाता है क्योंकि इंसानी आबादी का आधा हिस्सा महिलाओं से पूरा होता है। महिलाएं जब खुद को आधी आबादी कहती हैं तो इसका सीधा सा मतलब है कि वे संसाधनों और अवसरों के बंटवारे में अपने आधे हक का दावा कर रही हैं लेकिन हकीकत यह है कि आज की तारीख में भी पुरुषों के वर्चस्व वाली इस दुनिया में आधा तो दूर संसाधनों और अवसरों में महिलाओं की हिस्सेदारी बेहद कम और शोचनीय है।

भारत में भी विभिन्न क्षेत्रों में जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, नौकरी, राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति ज्यादा अच्छी नहीं है, इसका प्रमाण विश्व आर्थिक मंच की वर्ष 2019 की लैंगिक असमानता रिपोर्ट की तालिका से मिलता है, जहाँ भारत को 112 वां स्थान प्राप्त हुआ है, वहीं यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 15 से 49 साल की आयु वर्ग की कुल महिलाओं में एक चौथाई महिलाएं कुपोषण की शिकार हैं, जिसमें से आधी से अधिक महिलाएं खून की कमी यानी एनीमिया से पीड़ित हैं। यह आंकड़ा बताता है कि हमारे समाज में मर्दों के मुकाबले औरतों को कम खाना मिलता है। घरों में छोटे बच्चों के बीच इस तरह के भेदभाव आसानी से देखने को मिल जाते हैं। लोग बेटी के मुकाबले बेटे के लालन-पालन पर ज्यादा ध्यान देते हैं। अक्सर यह देखने को मिलता है कि लोग लड़कों को लड़कियों के मुकाबले ज्यादा पढ़ाते हैं। लड़कियों को बस

इतने तक ही शिक्षा देने की जरूरत समझी जाती है ताकि वह घर-परिवार संभाल ले और ज्यादा से ज्यादा कोई छोटी-मोटी नौकरी कर ले।

एक समय था जब हमारे देश में पति के मर जाने के बाद औरतों को सती मानकर आग में जिंदा जला दिया जाता था, समय के साथ यह प्रथा तो खत्म हो गई लेकिन औरतों पर होने वाले जुल्म खत्म नहीं हुए। एक तरफ हमारे समाज में औरतों को देवी माना जाता है, उनकी पूजा की जाती है, वहीं दूसरी तरफ उन्हें कभी डायन, कभी कुल्टा तो कभी चरित्रहीन बता कर मार दिया जाता है, दहेज के नाम पर उन्हें जिंदा जला दिया जाता है, उनके साथ बलात्कार किया जाता है, उनके ऊपर तेजाब फेंक दिया जाता है, औरतों के ऊपर होने वाले जुल्म की दास्तां यहीं खत्म नहीं होती, वो पैदा न हों इसलिए उन्हें गर्भ में ही मार दिया जाता है।

औरतों के खिलाफ होने वाले हिंसा के इन रूपों से तो हम वाकिफ हैं। आये दिन अखबारों, टीवी और सोशल मीडिया पर इस तरह की हिंसा की खबरें दिखती रहती हैं। लेकिन औरतों के खिलाफ होने वाली हिंसा का एक बड़ा हिस्सा आज भी हमारी नजरों से ओझल है, आज भी उन पर खुलकर बात नहीं की जाती। आज पूरे देश में बलात्कार पर बात हो रही है, होनी भी चाहिए लेकिन दिक्कत यह है कि हम सिर्फ घर के बाहर होने वाले बलात्कार पर ही बात कर रहे हैं। जो बलात्कार घर के अन्दर होते हैं उन पर कौन बात करेगा? जो बलात्कार घरवालों के द्वारा होते हैं उन पर कौन बात करेगा? जो बलात्कार शादी के बाद पति के द्वारा होते हैं उन पर कौन बात करेगा?

प्रश्न यह है कि आज समाज में महिलाओं की जो दुर्दशा है, गैरबराबरी की स्थिति है, या उन्हें एक शरीर, एक वस्तु की तरह समझने की जो सोच है, उसके जिम्मेदार कौन हैं? कुछ लोगों का मानना है कि इसके लिए पुरुष जिम्मेदार है और कुछ का कहना है, इसके लिए महिलाएं खुद ही जिम्मेदार हैं, क्योंकि जितना भी उत्पीड़न महिलाओं का होता है, उसके केन्द्र में महिलाएं ही होती हैं, उदाहरण दिया जाता है कि दहेज के लिए सबसे ज्यादा प्रताड़ित सास ही करती है, भ्रूण हत्या का प्रश्न आता है, तो महिलाएं ही सबसे ज्यादा जोर देती हैं, और एक तर्क

और आज कल प्रचलित है कि महिलाएं ऐसे कपड़े पहनती हैं जिसे देखकर पुरुषों के अंदर उत्तेजना बढ़ने लगती है।

मेरा मानना है कि भारतीय समाज में महिलाओं की इस चिंताजनक स्थिति के लिए मुख्यत: तीन कारण सामने निकल कर आते हैं, मनोवैज्ञानिक कारण, आर्थिक कारण और राजनैतिक कारण। जिसमें सबसे पहला है – मनोवैज्ञानिक कारण या फिर ये कहें वह सोच, वह मानसिकता, जो हमारे परिवारों में, समाज में या देश में महिलाओं को लेकर विकसित हो चुकी है। एक बात पर जरा गौर फरमाइए – सभी स्त्रियों की संरचना एक जैसी होती है, लेकिन हमारी अपनी बहन के प्रति, जो कि एक स्त्री है, उसकी तरफ हमारा नजरिया कुछ और होता है, और दूसरे की बहन के प्रति जो हमारी सोच होती है, उसमें फर्क कैसे हो जाता है? उसकी बुनियादी वजह क्या है? क्योंकि स्त्री तो स्त्री ही है ना। हमारी बहन की भी शारीरिक बनावट एक स्त्री की ही है और जो दूसरी महिला है, उसकी भी शारीरिक बनावट एक स्त्री जैसी ही है। लेकिन वह कौन से कारक हैं जिनके कारण आपके नजरिये में फर्क आ जाता है? मैंने बहुत कम सुना है कि शराब के नशे में या पागलपन में किसी की दृष्टि अपनी बहन के प्रति विपरीत होती है। क्योंकि जब हम पैदा होते हैं, तब से ही हमारे दिमाग में यह बात बिठा दी जाती है कि यह तुम्हारी बहन है और धीरे-धीरे जो हमारा सब-कॉन्शियस है, जहाँ से हमारा माइंड ऑपरेट होता है, उसमें यह बात अच्छे से बैठ जाती है कि यह लड़की हमारी बहन है। शरीर पहले हरकत नहीं करता, पहले हमारा सब-कॉन्शियस ऑपरेट होता है और फिर धीरे-धीरे वह पूरे माइंड को अपने कब्जे में लेता है। फिर शरीर उसी तरह काम करता है। बचपन से ही जो बात बताई जाती है कि यह बहन है, यह माँ है, तो इसका असर हम बड़े पैमाने पर पुरुषों में बड़े होकर भी देखते हैं। इससे यह बात समझ में आती है कि हमारे परिवार के अंदर अगर बचपन से एक संतुलित सोच डाली जाए तो उसका असर पूरी जिंदगी भर रहता है।

बचपन से की गयी काउंसलिंग का प्रभाव क्या बदलाव ला सकता है, आप इस उदहारण से समझ सकते हैं। जैसे एक अस्पताल में चार बच्चे पैदा हुए –

एक हिन्दू का बेटा था, एक मुस्लिम का था, एक सिक्ख का था, एक ईसाई का था। चार माँओं की कोख से पैदा हुए उन चारों बच्चों को अदल-बदल कर दीजिए। सिक्ख का बच्चा मुस्लिम के घर, मुस्लिम का बच्चा हिन्दू के घर, हिन्दू का बच्चा ईसाई के घर और ईसाई का बच्चा सिक्ख के घर, उन माँ-बाप को नहीं पता कि बच्चों को बदल दिया गया है। जब ये बच्चे बड़े होंगे तो क्या बनेंगे? जिस परिवार में उनकी परवरिश होगी, वही बन जाएंगे क्योंकि पैदा होते वक्त तो कोई हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई होता नहीं है। उसकी परवरिश हम करते हैं। धीरे-धीरे हम उसे हिन्दू बना देते हैं। धीरे-धीरे हम उसे मुसलमान बना देते हैं। धीरे-धीरे हम उसे सिक्ख बना देते हैं। धीरे-धीरे हम उसे ईसाई बना देते हैं। फिर एक दिन वह कहता है - मैं हिन्दू हूँ। मैं मुसलमान हूँ। मैं सिक्ख हूँ। मैं ईसाई हूँ। ऐसे ही तो सारे लोग बनते हैं। कोई और तरीका नहीं है, हमारे बनने का। कुदरत तो हम सब को इंसान के रूप में ही भेजती है। परवरिश से अगर इतना फर्क पड़ जाता है कि जन्म तो हमारा हिन्दू के परिवार में हुआ, लेकिन परवरिश हमारी मुसलमान के परिवार में हो गई तो हम मुसलमान बन गए।

अब प्रश्न यहाँ पर आता है कि आमतौर पर बच्चे के मन में कॉउंसलिंग का यह काम उसकी माँ करती है। लेकिन माँ की जो सोच होगी वही तो वह बच्चे में डालेगी, और माँ की सोच कैसे बदलती है, माँ की सोच माँ नहीं बदलती। उसकी सोच तो हमारे समाज में, हमारे परिवार में, हमारे देश में जिस तरह का सिस्टम होता है, वह सिस्टम ही माँ की सोच को प्रभावित करता है, बचपन में वह ऐसा नहीं सोचती। जवानी में हर माँ की सोच दूसरी तरह की होती है। लेकिन जब इस समाज और परिवार के सिस्टम से टकराते-टकराते वह जीत नहीं पाती है, तब वह समझौता करती है। सोचती है कि अब तक जो मैंने संघर्ष किया, जो मैंने समझौता किया, वह अगर आगे भी करना पड़ गया तो? वह उस हिसाब से अपने को ढाल लेती है।

बच्चे की सोच बदलेगी माँ और माँ की सोच कहाँ से प्रभावित होती है - सिस्टम से। इसीलिए समाज के अंदर का सिस्टम जब तक नहीं बदलेगा, माँ की सोच नहीं बदल सकती। माँ की सोच नहीं बदलेगी तो चाहे वह बेटा हो या बेटी

हो, उसकी सोच को बदलना बहुत कठिन काम है। इसलिए अगर हम मूल में आकर देखते हैं तो उसका मूल कारण सिस्टम ही है, सोच या मनोविज्ञान किस प्रकार तैयार होता है, उसे आप इस बात से बेहतर समझ पायेंगे कि हमारे दोस्तों की बात हमें बुरी नहीं लगती। सामान्यत: हमें पति की बात बुरी लगती है। एक ही बात को अगर एक समय में पति भी कह रहा हो और हमारी दोस्त भी कह रही हो, तो दोस्त की बात समझ में आती है, पति की कम आती है। ऐसे ही अगर एक बात को एक ही समय पर पत्नी कह रही हो और पुरुष का दोस्त कह रहा हो, तो दोस्त की बात समझ में आ जाती है, पर पत्नी की कम समझ आती है। क्योंकि दोस्ती के बीच में एक-दूसरे का सम्मान, एक-दूसरे की डिग्निटी, एक-दूसरे की कमी और एक-दूसरे की अच्छाई, सभी के साथ हम एक-दूसरे को स्वीकार करते हैं, परन्तु रिश्तों में हम ऐसा नहीं करते और रिश्ते में जब हम समझना बन्द कर देते हैं, तो संवाद की गुंजाइश खत्म हो जाती है और जब संवाद खत्म हो जाता है, तो वह विवाद को जन्म देता है, क्योंकि आप समझना नहीं चाहते हैं, आप सिर्फ ऑर्डर देना चाहते हैं और इस विवाद से एक सत्ता का जन्म होता है, अगर ऑर्डर स्त्री दे रही हो तो स्त्रीसत्ता और यदि पुरुष दे रहा हो तो पुरुषसत्ता कहलाता है। सत्ता हमेशा हर समय वर्चस्व की ओर बढ़ती है, वह किसी को दबा कर के ही पैदा होती है।

हमारे समाज में भी सिस्टम समय-समय पर बनते रहे हैं और बिगड़ते रहे हैं, अलग-अलग समाज में अलग-अलग सिस्टम रहे हैं, लेकिन यह बात सच है कि पुरुष वर्चस्व का सिस्टम सदैव हावी रहा है, और इस पितृसत्तात्मक सोच की वजह से ही पुरुषों ने हजारों सालों से महिलाओं को दोयम दर्जे का इंसान बना रखा है। उसके बीच में से नई-नई प्रतिभाएं निकली हैं। लेकिन यह भी बात सच है कि आज की परिस्थिति में महिलाओं को जहाँ मौका मिला है, उनकी शारीरिक क्षमता, उनकी बौद्धिक क्षमता पुरुषों से हमेशा आगे जाकर के खड़ी हुई है। अगर आप मातृसत्तात्मक सिस्टम बनाओगे तो इससे गाड़ी आगे बढ़ने वाली नहीं है और अगर आप आज के पितृसत्तात्मक समाज को लेकर आगे बढ़ना चाहोगे, तो इससे भी गाड़ी आगे बढ़ने वाली नहीं है। इसलिए मुझे लगता है कि आज हम जहाँ खड़े हैं, वहाँ से हमें एक बैलेंस सिस्टम को बनाने की जरूरत है।

मुझे ऐसा लगता है कि चाहे रिश्ता पिता और पुत्री का हो, माँ और पुत्र का हो, पति और पत्नी का हो, जितने भी तरह के रिश्ते हैं, दोस्ताना जो रिश्ता है, जहाँ हम एक-दूसरे की कमियों-खामियों को बर्दाश्त करते हैं और एक-दूसरे की अच्छाई की तारीफ भी करते हैं, वह रिश्ता अगर हम बना पाते हैं तो सारे दायित्व और सारी जिम्मेदारियों के बावजूद हमारी जिंदगी ठीक चलती है। जिंदगी में परिस्थितियां बदलती रहती हैं। एक ही परिवार में बहुत तरह के रिश्ते होते हैं। मुझे लगता है कि इन सभी रिश्तों के बीच में एक दोस्ती का रिश्ता होना चाहिए। वह एक ऐसा रिश्ता होता है जिसमें संवाद की गुंजाइश बनती है और संवाद एक ऐसा रास्ता है, जहाँ समझने-समझाने की गुंजाइश बनती है। उसी गुंजाइश से हम एक-दूसरे को समझ करके एक-दूसरे की सोच को बदल सकते हैं और यह संवाद अगर स्थापित होगा तो परिवार में यकीनन ही सुकून रहेगा। अन्यथा जब आप हर तरफ से लड़कर के, भागकर के परिवार में जाते हैं, तो आपको परिवार में भी सुकून नहीं मिलता है। मेरा अनुभव है जितने लोगों से मैं बात करता हूँ, 90 फीसदी लोग जो आज परिवार में रहते हैं, उनके मन में कभी न कभी परिवार छोड़ देने का विचार जरूर आता है। दूसरी जगह जा नहीं सकते क्योंकि रास्ता नहीं है। विकल्प नहीं है। फिर वह मजबूरी में लौट कर आते हैं। तो मुझे ऐसा लगता है कि सोच के लेवल पर एक संतुलित दृष्टिकोण की जरूरत है। उसके मूल में जो दोस्ती का रिश्ता है, वह कारगर है।

मेरा मानना है चाहे पति-पत्नी का रिश्ता हो, माँ-बेटे का रिश्ता हो, बाप-बेटी का रिश्ता हो, किसी भी रिश्ते में मैत्री भाव को लाने की जरूरत है। इससे हमारा मनोविज्ञान तैयार होता है। हमारा सब-कॉन्शियस माइंड, जिससे हम ऑपरेट होते हैं, वह तैयार होता है। उसकी शिक्षा अगर हम बचपन में ही बेटे और बेटियों को देते हैं या फिर जहां भी हम खड़े हैं, अगर हम ये शिक्षा देते हैं, तो इससे सब-कॉन्शियस में बदलाव होगा।

आजकल महिलाओं पर बढ़ते अपराधों को लेकर कई तरह के तर्क दिए जाते हैं और इस सोच को विकसित करने का प्रयास किया जाता है कि ऊपर वाले ने महिलाओं को खूबसूरत बनाया तो हम क्या करें, महिलाएं ऐसे कपड़े पहनती

हैं जिसे देखकर पुरुषों के अंदर उत्तेजना बढ़ती है, वैज्ञानिक तर्क दिया जाता है कि पुरुषों के अंदर जो हॉर्मोन है, वह इस तरह का है कि उसके अंदर उत्तेजना जल्दी पैदा होती है, उसके लिए हमारी क्या जिम्मेदारी है, महिलाएं शारीरिक रूप से कमजोर हैं, ईश्वर ने उन्हें ऐसा ही बनाया, इसमें पुरुषों का क्या दोष है, महिलाएं ही महिलाओं की दुश्मन होती हैं वगैरह वगैरह ।

यह सारे तर्क सामान्य तौर पर आज हमारे समाज में प्रचलित हैं और जब आप अपने दोस्तों से मिलते हैं तो वहाँ भी इन तर्कों पर बात होती ही होगी। रिश्तेदारों से मिलेंगे तब भी सुनते ही होंगे। हाई सोसाइटी हो, मिडिल क्लास हो, पढ़े-लिखे लोग हों, चाहे कम पढ़े-लिखे लोग हों, यह एक तरह की सोच बनी हुई है। उदाहरण के लिए मैं बार-बार कहता हूँ - आपके गांव में, आपके मोहल्ले में एक लड़की के साथ अगर रोजाना कुछ लड़के छेड़छाड़ करते हैं तो जल्दी कोई कुछ नहीं बोलता। पर जिस दिन वह पलट कर थप्पड़ मार देती है, तो पूरे गाँव और मोहल्ले में कोई यह नहीं कहता कि बहुत बहादुर लड़की है बल्कि इसके विपरीत हर आदमी यह बोलता है कि बहुत उड़ रही है, बहुत तेज बन रही है। जब वह अपनी क्षमता का प्रदर्शन करती है तो उसकी क्षमता देखते ही वे लोग उसे झुकाने के लिए तमाम तरह के माहौल तैयार करते हैं। उनके परिवार वालों पर दबाव बनाया जाता है कि अपनी बेटी को संभाल लो, क्योंकि वह जवाब देना सीख रही है।

मेरा आपसे कहना है यह जो तर्क है कि महिलाएं शारीरिक रूप से कमजोर हैं, यह गलत है। कमजोर का मतलब क्या होता है? जिसका अपने ऊपर नियंत्रण नहीं है। आप (पुरुष) का हॉर्मोन कंट्रोल नहीं होता है तो कमजोर आप हैं। अगर आपको गुस्सा आता है तो कमजोर आप हैं। यह आपकी कमजोरी की निशानी है। इसलिए इस परिभाषा को बदलना पड़ेगा कि कमजोर किसे कहते हैं और मजबूत किसे कहते हैं? मजबूत आदमी महात्मा गांधी थे। जिनके अंदर यह हिम्मत थी कि अगर कोई एक गाल पर थप्पड़ मारता है तो दूसरा गाल आगे कर दें और उसे सहन करें। हमला करना मजबूती नहीं होती है। आज अगर समाज चल रहा है, सृष्टि चल रही है तो महिलाओं की मजबूती के दम पर चल रही है।

महिलाओं के अंदर जो सोच पैदा होती है वह समाज को देख कर पैदा होती है और आज जो सोच हमारे समाज में विकसित है, वह पुरुषों की दी हुई है। इसलिए पुरुष के अंदर जो सोच है, वही महिला के अंदर भी जा रही है। हमारे घर में जब बच्चे पैदा होते हैं चाहे बेटी हो या बेटा हो, आप देखेंगे कि 12 साल की उम्र तक बेटी के अंदर ज्यादा काबिलियत होती है, ज्यादा सक्रियता होती है। बेटी के अंदर ज्यादा करुणा होती है। हर काम को वह दौड़-दौड़ कर करती है। लेकिन उम्र बढ़ने के साथ-साथ हम-आप उसके अंदर डर डाल देते हैं। मेरा बहुत साफ मानना है कि जितनी महिलाएं डरती हैं, उससे दस गुना ज्यादा पुरुष डरते हैं अपनी बेटी को लेकर, अपनी मां को लेकर, अपनी पत्नी को लेकर। क्योंकि वह समाज की हकीकत को जानते हैं। महिलाएं शायद पुरुषों की मानसिकता को उतना नहीं जानती हों, पर हर पुरुष दूसरे पुरुष की मानसिकता को जानता है। वह समझता है और शायद इसलिए उसी डर के कारण वह धीरे-धीरे अपनी बेटी को, अपनी बहन को दबाना शुरू करता है। मानसिक तौर पर सुबह से लेकर रात तक सौ बार टॉर्चर करता है और अंततः वह इसे स्वीकार लेती है। इसलिए ही यह सोच बनती है। आप लोगों को याद हो तो गाँव में कहीं किसी के पैर बड़े न हों जाए, इस डर से उसे बचपन से ही जूता पहनाया जाता था। आप-हम देखते हैं कि हम सब की शारीरिक बनावट अलग-अलग है। परिस्थितियां बस पैदा हुई हैं कि पंजाब का आदमी लम्बा होता है, मणिपुर का छोटा होता है और परिस्थितियों से हमारी शारीरिक और मानसिक बनावट बनती है।

अधितकतर घरों में आपने यह देखा होगा कि एक बेटी अपनी माँ से यह जिद्द करती है कि दुकान तक तो चले जाने दो, सहेली के साथ बाहर घुमने जाने दो, बाजार तक तो चले जाने दो। बाप तैयार नहीं होता। भाई तैयार नहीं होता। भाई को डर क्यों लगता है? बाप को डर क्यों लगता है? उसके अंदर हिम्मत क्यूं नहीं पैदा होती? दरअसल पुरुषों के डर के मुख्यतः दो कारण हैं। पहला कारण - समाज की पितृसत्तात्मक सोच है, बाप-भाई-पति को लगता है कि अगर उनकी बेटी-बहन-पत्नी बाहर जाती है, बाजार जाती है, पढ़ने के लिए कहीं दूर स्कूल/कॉलेज/विश्वविद्यालय जाती है तो वहाँ वो अपने पुरुष दोस्त से बात करेगी, अपनी मर्जी के किसी और लड़के से मिलेगी, जिससे समाज में उनकी बदनामी

होगी, समाज के लोग हमारे बारे में बातें बनायेंगे, हमारी इज्जत खराब हो जाएगी। माँ तो फिर भी बेटी को बाहर भेजने की हिम्मत करती है मगर भाई-बाप पितृसत्तात्मक सोच के कारण गैर क्या कहेंगे ये सोचकर अपनी ही बेटी-बहन-पत्नी को घर में कैद कर देते हैं। मेरा मानना है कि हमें अपनी बेटी-बहन-पत्नी पर विश्वास करना चाहिए न कि झूठी इज्जत की खातिर उनकी आजादी पर रोक लगानी चाहिए।

दूसरा कारण - घर की महिला की सुरक्षा का होता है, क्योंकि पुरुष समाज की हकीकत को जानता है। सिस्टम की हकीकत को जानता है। वह पुरुषों की मानसिकता को जानता है। आए दिन अखबार में महिलाओं के साथ होने वाली हैवानियत की खबरें पढ़ता है। महिलाओं की सुरक्षा को लेकर पुरुषों के अन्दर एक तरह का डर घर कर जाता है और यह डर पैदा करने वाले भी पुरुष ही हैं। इसलिए इसका समाधान भी पुरुषों को ही निकालना पड़ेगा।

मेरा कहना है, महिलाओं को सुरक्षा नहीं चाहिए। आप (पुरुष) अपने दिमाग की सुरक्षा पैदा कर लो। अगर बाप हो तो हिम्मत के साथ जैसे बेटे को बाहर भेजते हो, वैसे ही बेटी को भी बाहर भेजने की हिम्मत पैदा कर लो। अपने आप समाज के अन्दर बदलाव आना शुरू हो जाएगा। पुरुष अपने अन्दर के डर को खत्म कर लें। वह डर निकलेगा कैसे? चाहने से तो नहीं निकलेगा। माहौल चाहिए उसके लिए और वह माहौल एक व्यक्ति नहीं बना सकता। उसके लिए सामूहिक प्रयास करना पड़ेगा क्योंकि अगर आप हिम्मत करके बेटी को बाहर भेज देते हैं और कल कोई अप्रिय घटना हो जाती है तो पूरा गाँव इकट्ठा हो जाएगा, सारे रिश्तेदार इकट्ठा हो जाएंगे और बोलेंगे कि तुम बहुत बनते थे न, देखो क्या हो गया।

मेरा मानना है कि परिवार के अन्दर सबसे पहले बाप को अपनी सोच बदलनी पड़ेगी। पुरुष को अपनी सोच बदलनी पड़ेगी। सीधे-सीधे मैं कहता हूँ कि अपने अन्दर का डर निकालो और डर निकालने के लिए प्रयास करो। सब के घर में महिलाएं हैं। उनको बाहर भेजो। देखो धीर-धीरे डर कैसे निकलता है और फिर भी अगर डर लगता है तो किन वजहों से लगता है, उस वजह को

ठीक करने के लिए सामूहिक प्रयास का प्रयत्न करो। छुपाने से समस्या का समाधान नहीं होने वाला है। उस समस्या का ऑपरेशन करना ही पड़ेगा और ऑपरेशन के लिए सबसे जरूरी होता है इस बात को स्वीकार करो कि बीमारी है। बीमारी महिलाओं में कम है, पुरुषों में ज्यादा है। पुरुषों में ज्यादा डर है और उस डर को कैसे निकाला जा सकता है, उसका रास्ता ढूंढो।

मेरा आपसे निवेदन यह है, खासतौर से पुरुषों से, आप अपने आसपास बात करो कि यह जो हम लोगों के अन्दर डर बैठा हुआ है, उसको कैसे दूर किया जा सकता है? आपस में डिस्कशन शुरू करो। बाहर वालों की जरूरत नहीं। सिर्फ दोस्तों, रिश्तेदारों का जो भी सर्किल है, उनसे बात करो कि अपने अन्दर हर समय जो डर लगा रहता है उसे कैसे ठीक किया जाये। अपराधियों से उतना डर नहीं लगता। लेकिन अपनी बेटी को लेकर, अपनी माँ को लेकर, अपनी बहन को लेकर, अपनी पत्नी को लेकर के हर समय डर लगा रहता है। यह डर सभी पुरुष अपने दिल और दिमाग से कैसे निकाल पाएंगे? इसका उपाय सोचो। क्योंकि मुझे लगता है, यहाँ जब रास्ता बनाओगे, महिलाओं के लिए रास्ता खुद ही बनता चला जाएगा। उससे ही वह नई ऊर्जा पैदा होगी जिससे उनके भी आगे बढ़ने का रास्ता बनेगा।

परिवार एक प्रयोगशाला है। जिस परिवार में जिस तरह की मानसिकता होती है, उस परिवार से आमतौर पर उसी तरह की मानसिकता बेटे-बेटियों के अन्दर पैदा होती है। इसलिए आज जो सोच उनके अन्दर आप देखते हैं, वह हमारी दी हुई है, पुरुषों की दी हुई है, हमारे परिवार की दी हुई है। अगर परिवार की सोच बदलती है, पुरुषों की सोच बदलती है तो आप यह मानकर चलें कि महिलाएं आपसे एक कदम आगे बढ़कर हर एक क्षेत्र में काम करके दिखा सकती हैं। उनके अन्दर यह कुदरती क्षमता है। यह बात पुरुषों को समझने की जरूरत है।

सबसे पहले पिता को पुरुषवादी मनोस्थिति को बदलने का प्रयास करना होगा। सोच बदलने के लिए बचपन से ही बेटी और बेटा बराबर है, यह उनमें मानसिकता लाने की जरूरत है। शरीर से मजबूती नहीं आती, इस बात को आप समझ लो। शरीर सहयोगी है, लेकिन मजबूती शरीर से नहीं आती है। मजबूती

हमारी सोच से आती है। आपको बहुत ही पतला दुबला इंसान भी वह काम कर के दिखा देगा जो पहलवान नहीं कर सकता। क्योंकि मजबूती जो होती है वह सोच से आती है। बेटी हो या बेटा बचपन से ही उसकी मन:स्थिति को हमें मजबूत करना होगा। उसकी सोच को मजबूत करना होगा। पहले परिवार के अन्दर, दूसरा स्कूल के अन्दर।

मैं इस बात से सहमत हूँ कि बच्चों के मन में किसी भी चीज को लेकर एक जिज्ञासा होती है। स्वाभाविक है कि वह क्या है? वह कैसे है? वह क्यूं है? जितना आप बच्चों को, लड़के-लड़कियों को अलग करते हो, उतना ही अकेले में पुरुष के अन्दर महिलाओं को जानने की और महिलाओं के अन्दर भी पुरुष को जानने की इच्छा पैदा होती है। चूंकि हमारे यहां सामूहिक तौर पर और सार्वजनिक तौर पर एक-दूसरे के साथ बैठने का अवसर नहीं है, जानने का अवसर नहीं है इसलिए लोग गुप्त तरीके की उस तलाश में रहते हैं कि अकेले में कोई लड़की मिल जाए, अकेले में कोई लड़का मिल जाए, एकान्त जगह मिल जाए। दिमाग ऐसी चीजों की फिराक में रहता है और प्लान करता रहता है कि कब ऐसी परिस्थिति बने और मैं उसके नजदीक जाऊँ। इसके लिए हमें लड़के-लड़कियों का स्कूल में साथ-साथ बैठकर पढ़ाई की बात को बढ़ावा देना होगा। इसलिए मेरा बहुत स्पष्ट मानना है कि लड़के-लड़कियों को साथ-साथ परवरिश की जरूरत है। उसमें निगरानी भी जरूरी है, जिससे कि उनको गाइड किया जा सके, और सही दिशा दी जा सके।

मेरा मानना है कि समाज के अन्दर महिलाओं की स्थिति को ठीक करने के लिए, एक संतुलित समाज बनाने के लिए सामाजिक सोच बदलने के साथ-साथ उनकी आर्थिक क्षमता को भी बढ़ाना पड़ेगा। क्योंकि महिलाओं का आर्थिक रूप से कमजोर होना महिलाओं की वर्तमान स्थिति का दूसरा बड़ा कारण है। मुझे ऐसा लगता है कि सोच के साथ-साथ अगर आर्थिक व्यवस्था को ठीक नहीं किया गया तो केवल सोच बदलने से काम नहीं चलेगा। दोस्ती भी आमतौर पर वहीं कामयाब होती है जिसमें थोड़ी-बहुत बराबरी हो। आप अपने दोस्ती के सर्किल को तलाशो तो दोस्ती होती बहुत लोगों से है, पर चलती उन्हीं से है, जिनसे थोड़ा

बहुत आर्थिक मिलान हो। थोड़ा बहुत वैचारिक मिलान भी हो। अपने से ज्यादा या कम वालों से दोस्ती बनती तो है, पर टिकती कम है। इसलिए जरूरी है कि समाज के अंदर आज महिलाओं की जो स्थिति है, उसको ठीक करने के लिए सामाजिक सोच बदलने के साथ-साथ उनकी आर्थिक क्षमता को भी बदलना पड़ेगा।

हमारे समाज में एक महिला का पुरुष के प्रति जो लगाव है, वह प्राकृतिक और वैज्ञानिक कारणों के अलावा आर्थिक कारणों से भी जुड़ा है। चाहे-अनचाहे एक प्राकृतिक लगाव के अलावा एक मनोवैज्ञानिक दबाव होता है कि कल हमारी जिन्दगी इसी के भरोसे चलनी है, बेटा क्या करता है, वह एक अलग मसला है। पर अगर बेटा हमसे विद्रोह कर लेगा तो मेरी जिन्दगी का क्या होगा। बेटी के लिए हर समय यही मन में रहता है कि बेटी पराई है। इसे किसी न किसी के घर जाना है।

मेरा यह मानना है कि महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए उनकी आर्थिक क्षमता को बदलना पड़ेगा, मजबूत करना पड़ेगा, वह चाहे नौकरी से मिलती हो, चाहे वह जमीन-जायदाद में मिलती हो, चाहे वह बैंक बैलेंस के रूप में मिलती हो। जैसी भी संपत्ति हो, महिलाओं की भी आर्थिक मजबूती जरूरी है। आर्थिक मजबूती न होने की वजह से महिलाओं की बात छोड़ दो, पुरुषों को भी बहुत सारी मजबूरियों को झेलना पड़ता है, बर्दाश्त करना पड़ता है। हमारी जिंदगी का संचालन करने में आर्थिक व्यवस्था एक अहम प्रश्न है और इसलिए मेरा व्यक्तिगत मानना है कि समाज के अन्दर हर पुरुष को और हर महिला को, वह किसी भी जाति से हो, किसी मजहब से हो, किसी क्षेत्र से हो, किसी भी भाषा से ताल्लुक रखते हों, एक न्यूनतम आर्थिक गारंटी होनी चाहिए। अगर एक सभ्य समाज है, एक विकसित समाज है तो एक मिनिमम आर्थिक गारंटी होनी चाहिए और दूसरा हर स्त्री-पुरुष की देश के प्रति एक न्यूनतम जिम्मेदारी होनी चाहिए कि उसे इतना मिलेगा ही मिलेगा और उसे इतना करना ही पड़ेगा। उसके बाद उसकी प्रतिभा, उसकी क्षमता, उसका ज्ञान, उसका विज्ञान, उसके आगे लागू होना चाहिए और भविष्य में यकीनन ही मिनिमम आर्थिक गारंटी से स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में बराबरी का रास्ता भी खुलेगा।

मनोवैज्ञानिक व आर्थिक कारणों के अलावा तीसरा महत्वपूर्ण कारण है – राजनैतिक कारण। क्योंकि वह सूत्रधार है इन सारी चीजों के पीछे, जब तक वो नहीं बदलेगा, आर्थिक सिस्टम नहीं बदल सकता। आर्थिक सिस्टम नहीं बदलेगा तो माँ की सोच नहीं बदलेगी। माँ की सोच नहीं बदलेगी तो परवरिश नहीं बदल सकती और अगर परवरिश नहीं बदलेगी तो समग्रता में बदलाव का रास्ता नहीं बनेगा। इसलिए इन कारणों को समझना जरूरी है और इन कारणों की तह में जाकर, जो इनके मूल कारण हैं, उसे बदलना जरूरी है। उसी बदलाव से नया रास्ता बनेगा, नया समाज बनेगा, नई सोच बनेगी और एक संतुलन के साथ चाहे परिवार हो या समाज, उस खुशहाली का, उस आनंद का, जिनकी हम सब तलाश में हैं, उसका भी रास्ता बनेगा।

कुदरत ने हम सभी को आर्थिक रूप से बराबर नहीं बनाया। लेकिन एक परिवार में बैलेंस थ्योरी चलती है, चाहे अमीर का परिवार हो, चाहे गरीब का परिवार हो। दुनिया के किसी भी कोने में किसी भी परिवार को आप देख लें, उस परिवार में अगर नमक-रोटी बनी होगी तो वह परिवार के सभी सदस्यों को दी जाएगी। त्यौहार पर खीर-पूड़ी बनेगी तो भी वह सबको दिया जाएगा। यह तो स्थिति और परिस्थिति पर निर्भर करता है। मैंने इस दुनिया में कोई ऐसा परिवार नहीं देखा जहाँ अपवाद नहीं होते हों। अपवाद हर चीज के होते हैं। लेकिन उस परिवार में अगर 12 तरह की सब्जी बनी हो, थाली में 20 तरह की कटोरियां रखी हों। तब भी उस परिवार में वह सबको मिलेगा और अगर नमक-रोटी है, तब भी उस परिवार में सबको मिलेगा। परिवार इसीलिए चल रहा है, क्योंकि परिवार एक ऐसा सिस्टम है जहाँ हर एक स्थिति-परिस्थिति में अपने परिवार के सदस्यों के प्रति वह एक न्यूनतम गारंटी की व्यवस्था करता है।

यह जो न्यूनतम गारंटी की व्यवस्था है, इसको देश के अन्दर लाना ही पड़ेगा। तभी एक बैलेंस दृष्टिकोण पैदा हो सकता है। परिवार के सदस्य एक-दूसरे के लिए मर-मिटने को क्यों तैयार होते हैं? क्योंकि उनको पता है कि वह सुख में होगा या दु:ख में होगा, अच्छे में होगा या बुरे में होगा, परिवार उसकी जिम्मेदारी लेता है, पर देश नहीं लेता। इसीलिए देश के प्रति जज्बाती लगाव तो लोगों में होता है, पर स्थायी लगाव नहीं होता। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि अगर देश

अपने नागरिकों के लिए न्यूनतम आर्थिक गारंटी की व्यवस्था करता है तो इससे लोगों के अन्दर देश के प्रति प्रेम-भाव और मजबूत होगा।

बच्चों से कहा जाता है कि देश के बारे में सोचो। पर बहुत सारे लोग जो देश के बारे में सोचते हैं, वह असल में देश के बारे में नहीं सोचते, वह अपनी राजनीति एवं वोट के लिए देश का नाम लेते हैं। अगर यह देश परिवार की तरह देश के लोगों की न्यूनतम जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले लेता है तो मैं दावे के साथ कहता हूँ - फिर इस देश में किसी को उपदेश देने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। सरकार को कोई और जिम्मेदारी निभाने की जरूरत ही नहीं पड़ती। जैसे परिवार हमारा है, वैसे ही देश सबका हो जाएगा। उसमें अपने आप वह भावना पैदा हो जाएगी। मुझे ऐसा लगता है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को अगर बदलना है, तो दृष्टिकोण बदलना होगा। चाहे वह पुरुष सत्ता हो या महिला सत्ता हो। समाधान इसका यही है कि दृष्टिकोण में संतुलन पैदा किया जाए।

जैसा हम आप सब जानते हैं कि हमारे दिमाग के दो हिस्से हैं - एक वह जिसको आप बता करके, समझा करके, काउंसलिंग करके ज्ञान अर्जित कर उसकी ग्रोथ कर सकते हैं। जैसा मैंने कहा कि हमें परिवार के अन्दर भी, स्कूल के अन्दर भी सोच को बढ़ाना है, विकसित करना है। एक सही सोच को विकसित करना है। पीढ़ी दर पीढ़ी जो गलत तर्क चलते आ रहे हैं, उसको हमें तोड़ना है। जैसा हम सब जानते हैं कि पहले लड़कियां बाहर स्कूल नहीं जा सकती थीं। कुछ हो जाएगा, ये डर था। यह महिलाओं को नहीं, पुरुषों को डर था। आज उसी देश के अन्दर करोड़ों की तादाद में महिलाएं, बच्चियां स्कूल जाती हैं। आज अगर आप किसी भी गाँव में चले जाओगे, हर गाँव की सड़क पर आपको छात्राएँ साइकिल से स्कूल जाती हुई दिख जाएंगी। पहले अगर गाँव में कोई महिला साइकिल चला दे तो अजूबा समझा जाता था। आज यह आम बात है। हमने अपनी सोच को तोड़ा। हिम्मत पैदा हुई। कभी गाँव में एक लड़की गई तो उस पर सवाल पैदा हुआ। दो गई होंगी तो सवाल पैदा हुआ होगा। आज दस जा रही हैं। आज जो लड़की स्कूल नहीं जा रही है, गाँव वाले उसके बाप से खुद बोलते हैं कि तुम अपनी बेटी को रोक रहे हो।

आज माहौल बदल गया। सोच बदल गई। यह माहौल का असर होता है और इस माहौल को बनाने के लिए सिस्टम का बहुत बड़ा योगदान है। सरकार का बहुत बड़ा रोल होता है माहौल को बनाने में। इसलिए आज इस देश के अन्दर लड़कियों के एजुकेशन की गारंटी सरकार की तरफ से होनी चाहिए। इस देश की हर बेटी को पढ़ाने की गारंटी सरकार को लेनी होगी, उसके मां-बाप चाहें या न चाहें। महिलाओं की शिक्षा अनिवार्य करनी पड़ेगी। उससे सबके दिमाग पर एक दबाव बनेगा। जब माँ-बाप पढ़ने के लिए भेजते हैं तो उनकी हिम्मत भी धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। धीरे-धीरे उनको समझ में आ जाता है। मैं फिर कहूँगा कि अपवाद को नियम बनाने की जरूरत नहीं है। तब भी बलात्कार की घटनाएं होती थीं, तब भी हिंसा की घटनाएं होती थीं, जब हमने चहारदीवारी के अन्दर बेटियों को बन्द कर दिया था, और आज जब हजारों-लाखों की संख्या में बेटियाँ स्कूल-कॉलेज जा रही हैं, नौकरी करने जा रही हैं, तब भी घटनाएं हो रही हैं। इन घटनाओं के आधार पर सब को ताला-चाभी में बन्द करने की जो मानसिकता है, सच कहें तो उस मानसिकता में ताला लगाने की जरूरत है और यह मानसिकता महिलाओं से ज्यादा पुरुषों में है। इसलिए पुरुषों के दिमाग में जितनी नकारात्मक सोच है, उसमें अगर हम ताला लगाएंगे तो निश्चित रूप से महिलाओं की आजादी थोड़ी बढ़ जाएगी।

जैसा मैंने कहा कि इस माहौल को बनाने में स्कूल का, परिवार का हाथ है। लेकिन सबसे बड़ा हाथ सरकार का है। जितने तरह के लोग आप देखते हैं, जो कहते हैं कि हॉर्मोन की वजह से कंट्रोल नहीं कर पाते उन सबको, समाज द्वारा, सरकार द्वारा, प्रशासन द्वारा और सिस्टम द्वारा कंट्रोल करना पड़ता है। कुछ लोग समझाने से मान जाते हैं। लेकिन कुछ लोगों को सख्ती से समझाना पड़ता है। कुछ लोगों को हिंसा करने में मजा आता है। अगर यह सब नहीं कंट्रोल हो रहा है तो उसे कंट्रोल करना पड़ेगा और इसके लिए तीन चीजों की सख्त जरूरत है - पहली बात सख्त कानून बनाने की जरूरत है। दूसरी जो सबसे बड़ी दिक्कत आ रही है, दिल्ली में हमने देखा है। निर्भया के केस के बाद इतना बड़ा आन्दोलन हुआ। लेकिन उसके बाद भी आज फास्ट ट्रैक कोर्ट की व्यवस्था को जिस तरह काम करना चाहिए, नहीं कर पा रही है, कानून बनाने के साथ-साथ फास्ट ट्रैक कोर्ट की व्यवस्था को ठीक करना होगा। समाज को ठीक करने के लिए इसकी

जरूरत है। क्योंकि कुछ लोग नियम से मानते है, कुछ लोग प्यार से मानते हैं और कुछ लोग भय से मानते हैं।

आप आमतौर पर देखते होंगे, सड़क पर जब हम बाइक से जा रहे होते हैं और कार वाला अगर आपको हल्की टक्कर मारता है तो उतना गुस्सा नहीं आता, लेकिन अगर वही हल्की सी टक्कर रिक्शावाले ने मारी हो तो उस पर एक दम से गुस्सा आ जाता है। क्योंकि आपका दिमाग यह ऑब्जर्व करता है कि इसको हम दबा सकते हैं। हमारा दिमाग इतना स्वच्छन्द नहीं है। परिस्थिति को भांप कर ही अपनी प्रतिक्रिया देता है। इसलिए कड़े कानून, फास्ट ट्रैक कोर्ट की इस देश में बहुत जरूरत है। यह बात सच है कि पुलिस थानों में महिलाओं की संख्या बढ़ेगी तो महिलाओं में शिकायत दर्ज कराने की हिम्मत बढ़ेगी। इसलिए यहाँ पर एक वैकल्पिक महिला पुलिस की जरूरत है और उसके द्वारा इन चीजों में सुधार होगा। अगर हम सचमुच महिलाओं की स्थिति में बदलाव चाहते हैं, तो एक साथ सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक व् राजनैतिक बदलाव की प्रक्रिया को शुरू करना होगा। नयी सोच ही नयी स्त्री को जन्म देगी, नयी स्त्री ही नए इंसान को जन्म देगी, और नए इंसान से ही नया हिंदुस्तान बनेगा।

❑❑❑

अध्याय
4

देश की मजबूती के लिए धर्मनिरपेक्षता की जरूरत

जब हम 'देश की मजबूती के लिए धर्मनिरपेक्षता' की बात करते हैं तो मुख्यत: चार शब्द आते हैं – देश, धर्म, मजबूती और निरपेक्षता। सबसे पहले हम 'देश' की बात करते हैं। देश क्या है? सिर्फ हिंदू धर्म को मानने वाले लोग या फिर सिर्फ इस्लाम धर्म को मानने वाले लोग या फिर सिर्फ सिख धर्म को मानने वाले लोग या फिर सिर्फ ईसाई धर्म को मानने वाले लोग या फिर सिर्फ किसी अन्य विशेष धर्म को मानने वाले लोग देश नहीं हैं। देश तो वह है जिसमें अलग – अलग भाषा, धर्म और संस्कृति को मानने वाले लोग एक साथ रह सकते हैं।

देश और धर्म के बीच मुख्य सम्बन्ध क्या है? एक देश के अंदर कई धर्मों को मानने वाले लोग रह सकते हैं और इसी प्रकार एक धर्म को मानने वाले लोग कई देशों में एक साथ रह सकते हैं। जैसे ईसाई धर्म को मानने वाले लोग सिर्फ इंग्लैंड में नहीं, दुनिया भर में हैं। बौद्ध धर्म को मानने वाले लोग केवल भारत में नहीं, दुनिया के बहुत से देशों में हैं।

आज देश और दुनिया में जो बहसें चल रही हैं, उनमें अंतर्विरोध है। दुनिया में जब मानव सभ्यता बनी – जंगलों के बीच, नदियों के किनारे लोग आए तब वह किस धर्म को मानते थे? आज जो धर्म का रूप है वह पहले नहीं था। जिस तरह की अलग सोच बनी, जीने का तरीका पैदा हुआ और सभ्यताओं का विकास हुआ, उसे ही धर्म का नाम दिया गया। जितनी तरह की जानकारी आज दुनिया में है उनके हिसाब से हर धर्म कहता है कि भगवान, अल्लाह, गॉड सब एक हैं। आज तक किसी भी धर्मग्रंथ, किसी भी चिंतन पद्धति या गुरु के माध्यम से नहीं सुना गया होगा कि भगवान अनेक हैं। अगर भगवान एक है, सृष्टि का रचयिता एक है, तो मानने में क्या दिक्कत है। अगर सभी एक हैं तो चीजें अनेक कैसे हो गईं? धर्म पैदा ही यह जानने के लिए हुआ की इस सृष्टि की उत्पत्ति

किसने की? क्या कोई ऐसी सर्वशक्तिशाली ताकत थी जिसने सृष्टि की रचना की, जब सभी धर्मों के अनुयायी यह मानते हैं की सृष्टि की रचना करने वाला एक है। चाहे उसे हम भगवान कहें, खुदा कहें या अन्य नामों से पुकारें तो फिर हम सभी को कम से कम इसे तो मान लेना चाहिए और इसके मानते ही आपस का झगड़ा खत्म हो जाएगा। अगर सबका रचयिता एक है तो हम अनेक कैसे हो सकते हैं।

यह आज का सच है की देश की मजबूती तभी संभव है जब उस देश के अंदर रहने वाले लोग एकता के सूत्र में बंधे हों। जब विवाद, नफरत और विखंडन पैदा होगा तो कोई देश, कोई राज्य, कोई मोहल्ला या कोई परिवार मजबूत नहीं हो सकता। देश को मजबूती की तरफ ले जाने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर बिखराव एवं विखंडन को समेटना होगा। जब तक यह विखंडन चाहे वह सामाजिक हो, वैचारिक हो, राज्य स्तर पर हो या देश के स्तर पर खत्म नहीं होगा। देश मजबूत नहीं हो सकता है।

विखंडन को रोकने का एक और समाधान है की भारतीय संविधान को मान लें। संविधान भी कहता है – तुम्हारी सारी मान्यताएं, सोचने का तरीका, अलग हो सकता है लेकिन फिर भी तुम इंसान हो और सब इंसान बराबर हैं। संविधान को मान लो या धर्म की मूल बात को मान लो। झगड़ा खत्म हो जाएगा। इन सारे झगड़ों का जाल स्वार्थ के लिए बिछा हुआ है। संविधान एवं धर्म स्वार्थ से ऊपर ले जाते हैं। यह स्वार्थी लोगों का जो तंत्र है, वह किसी भी मान्यता को मानने के लिए तैयार नहीं है।

हमारा प्रश्न इतना है कि वर्तमान में संविधान है, जिसे इंसान ने बनाया है। यह स्वतंत्रता संग्राम की लंबी कहानी से बना है। इसे मान लें। भगवान से भी अगर यात्रा शुरू करनी है तो सब बराबर हैं, सबको बराबर हक है। अगर हम सब एक ही भगवान की संतान है तो उसमें गैर-बराबरी की जगह नहीं है, सबको समान हक है। तो भगवान हों या संविधान दोनों जगह सबको बराबरी का रास्ता मिलता है। इसके अलावा बीच के रास्तों को बंद करना होगा।

धर्मनिरपेक्षता क्या है? जब यूरोप के अंदर राज्य की सत्ता में ईसाई धर्म के हस्तक्षेप की बात आई तो धर्म के साथ निरपेक्षता का प्रश्न आया। यह व्यक्ति के

लिए नहीं है। कोई भी व्यक्ति धर्म निरपेक्ष हो जाए, ऐसा संविधान नहीं कहता है। वह कहता है राज्य को, सरकार को धर्म निरपेक्ष रहना होगा। राज्य के लिए सभी धर्म बराबर हैं। सोच बनाई जाती है कि धर्म निरपेक्षता का अर्थ है – धर्म को मानो ही मत। धर्म विरोधी बन जाओ। धर्मनिरपेक्ष शब्द सरकार के लिए आया है ताकि सरकार सबको अवसर दे। अगर किसी को न्याय चाहिये तो न्यायालय में किसी भी धर्म को मानने वाला उतने ही हक के साथ और विश्वास के साथ जा सके कि हमें न्याय मिलेगा। न्यायालय की तरह वह पुलिस थाने में भी जा सके कि उसके साथ गैर-बराबरी नहीं की जाएगी। सरकार कोई नीति बनाती है तो वह सबके लिए हो धर्मनिरपेक्षता शब्द सरकार के लिए है। राज्य सत्ता सबके साथ बराबरी का व्यवहार करे जैसे भगवान करता है। जितने धर्म, मान्यताओं को मानने वाले लोग हैं इन सबका मालिक वही है – भगवान। ईसाई धर्म में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट का भी मालिक वही है। इस्लाम को मानने वालों में शिया- सुन्नी और देवबंदी- बरेलवियों का भी मालिक एक ही है। हिंदुओं में सवर्णों का, पिछड़ों का और दलितों का सभी का मालिक एक ही है।

हमने संविधान बनाया। एक व्यावहारिक ताकत पैदा की जिससे सबको सम्मान का रास्ता मिले। अगर तरक्की का रास्ता चाहते हैं तो हमें ऐसी व्यवस्था लानी होगी जो सबके साथ न्याय करे। कोई भी देश तरक्की के रास्ते पर तभी चल सकता है जब उस देश के लोगों में मोहब्बत का प्रवाह हो। उस देश के हर इंसान को तरक्की में हिस्सेदारी मिलती हो। आज दुनिया में सिर्फ उन देशों का ही विकास हो पाया है जिनके लोगों को तरक्की में हिस्सेदारी का रास्ता मिला है। भारत के बारे में सच में अगर कोई सोचता है तो उसे धर्म के सम्मान, इंसान की तरक्की आदि सभी बातों को सोचना होगा। यह तभी होगा जब मानसिक तौर पर सब लोग एक साथ हों। पक्षपात नहीं करना है। पक्षपात किसी भी धर्म के साथ अगर होगा तो नफरत की दीवार खड़ी हो जाएगी और सिर्फ धर्म ही नहीं, किसी भी व्यक्ति के साथ पक्षपात नहीं करना है। धर्म की व्याख्या आसान नहीं है। इस देश में हिंदू धर्म सनातन काल से है लेकिन आज भी हिंदू धर्म के लोगों में बराबरी नहीं है। आज भी उस धर्म के मंदिर में जहाँ सबका मालिक एक ही है, कोई दलित चला जाए तो धर्म खराब हो जाता है। धर्मनिरपेक्षता का सीधा अर्थ

व्यक्तिगत तौर पर यही है कि आप पांच वक्त के नमाजी हैं, आप आठ वक्त पढ़िए। सुबह ध्यान लगाते हैं, रात को भी लगाइए। दिन में मंदिर जाते हैं, शाम को भी जाइए। चाहे चर्च में घर बनाए या घर में चर्च बनाकर रहिए। आप अपने धर्म को दस गुना ज्यादा मानिए। देश आपको अवसर देता है। आपका चिंतन, आपकी पद्धति, आपकी भाषा, आपकी संस्कृति सब आप रखिए। आपको हक है, पर किसी पर यह सब थोपने की जरा भी गुंजाइश नहीं है।

यही मुख्य भावना है जिसके द्वारा स्वतंत्रता संग्राम की कहानी आगे बढ़ी। भारत लम्बे संघर्ष के बाद यह समझ पाया की इतिहास के अनुभवों से सीखकर ही आगे बढ़ा जा सकता है। दुनिया में जितनी लड़ाई ईसाई धर्म के दो समूहों कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के बीच में हुई है, उतनी हिंदू – ईसाइयों में नहीं हुई है। इस्लाम में शिया – सुन्नी की जितनी लड़ाई चल रही है, उतनी हिंदू–मुसलमान में भी नहीं चल रही। यही वह देश है जो हिंदुत्व की बात करता है। इसी देश में वैष्णव और शैव की जितनी लड़ाइयां हुई हैं, उतना हिंदू–मुस्लिम में भी नहीं हुई। भारत में जो बौद्ध धर्म जन्मा उसे खत्म कर दिया गया। दुनिया के तमाम देशों में आज भी बौद्ध धर्म जिंदा है। भारत में कैसे खत्म हो गया? इतिहास के पन्नों को अगर पलटकर देखा जाए तो पता लगता है कि सब जगह शिव की प्रतिमा हुआ करती थी। यहां शिव मंदिर थे। वह तोड़े गए। ब्रह्मा – विष्णु के मंदिर तोड़े गए।

धर्म अनादि काल से नहीं है। पहले इंसान पैदा हुए, फिर धर्म आया और चूंकि अलग – अलग जगहों पर सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हुआ, इसलिए हमारी भाषाएं अलग हो गईं। पूरी दुनिया से अगर भाषा को हटा दें तो क्या फर्क है। दुनिया के अंदर सिर्फ भंगिमाओं के माध्यम से बात करना हो तो क्या फर्क है? भाषाएं तो सभ्यताओं के विकास से पैदा हुई। जीवन पद्धति पैदा हुई। पूरी दुनिया का इतिहास कहता है कि जब मानव सभ्यता बनी तब लोग प्रकृति पूजा करते थे। सूर्य की पूजा होती थी। फिर धीरे–धीरे लोगों ने सोचना शुरू किया कि प्रकृति का मालिक कौन है? कुछ मानव निर्मित वस्तुओं के अलावा जो पूरा ब्रह्मांड है, वह कैसे बना? कैसे चल रहा है? इत्यादि बातें जिनसे अध्यात्म का जन्म हुआ। भगवान का जन्म हुआ। यह चिन्तन अलग–अलग जगह पर उत्पन्न

हुआ इसलिए भगवान भी सबके अलग हो गए। भारत में कबीर, रैदास, मीरा और दादू द्वारा जो पूरा भक्ति काल का आंदोलन है इसी पर हुआ कि सबका मालिक एक है। भगवान एवं संविधान को सच में मानने वाला व्यक्ति कभी गैर बराबरी का पक्षधर नहीं हो सकता। ऐसा होने पर ही सबके सम्मान का, सबकी तरक्की का रास्ता खुलता है। इससे ही देश मजबूत होगा। इसलिए राज्य धर्म निरपेक्षता का पालन करे। इंसान अपने मूल में इंसानियत को बसाए। इसी से देश की तरक्की संभव है।

❑❑❑

अध्याय
5

जाति, आरक्षण और सामाजिक न्याय

भारत की संस्कृति, सभ्यता और विरासत में बहुत कुछ ऐसा है जिसे सिर्फ भारतीय ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया के लोग सराहते हैं, उसे मानते हैं। लेकिन इसके साथ ही हमारी संस्कृति, सभ्यता और विरासत में कुछ ऐसी चीजें भी हैं जो सभी भारतीयों को एक होने से रोकती है, जो आपसी भाईचारे और बन्धुत्व को रोकती है, जो इंसान के द्वारा इंसान के शोषण को जायज ठहराती है। भारतीय समाज में इस विभेदकारी तत्त्व का नाम ही 'जाति' है।

जाति की उत्पत्ति वर्ण व्यवस्था से मानी जाती है। जिसके तहत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसे चार वर्णों की परिकल्पना की गई है। इसके अनुसार ब्राह्मणों को शिक्षा, ज्ञान और उपदेश; क्षत्रियों को राज-काज और युद्ध तथा वैश्यों को व्यवसाय करने की जिम्मेदारी दी गई है। शूद्र कहे जाने वाले लोगों को ऊपर के इन तीन वर्णों की सेवा का काम नियुक्त हुआ है। इन चार वर्णों के अलावा एक पांचवा वर्ण भी है जिन्हें अछूत कहा गया। इनकी हालत सबसे खराब रही है। इन्हें गांव के मुख्य भाग से अलग दक्षिण दिशा में रहना पड़ता था। इनकी छाया तक को अपवित्र माना जाता था। सबसे पहले चतुष्वर्ण की यह परिकल्पना ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में व्यक्त की गई। बाद में इसी परिकल्पना को और व्यवस्थित रूप से मनुस्मृति में लिखा गया। मनुस्मृति में तो यहाँ तक बताया गया है कि एक ही जुर्म के लिए अलग-अलग वर्ण को क्या सजा दी जायेगी। यही नहीं महिलाओं और बच्चों के बारे में भी इस ग्रन्थ में बहुत असंवेदनशील बातें कही गई हैं।

आज हम जितनी जातियों को देखते हैं उन सभी जातियों का संबंध ऊपर दिए गए किसी न किसी एक वर्ण से होता है। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो जातियों और वर्णों का यह क्रम बदलना संभव नहीं है। जो व्यक्ति जिस जाति

में पैदा होता है वह मरने तक और मरने के बाद भी उसी जाति का व्यक्ति माना जाता है। इस जाति व्यवस्था में जो जाति जितनी निम्न है उसकी जिंदगी उतनी ही चुनौतीपूर्ण होती है। शुद्र और अछूत कही जाने वाली जातियों को संसाधनों और अवसरों के बँटवारे में सबसे कम हिस्सा मिला है।

आदिवासियों की बात करें तो इनकी स्थिति ऊपर दिए गए इन वर्णों और जातियों से अलग रही है। इसकी वजह है – आदिवासी समाज का मुख्यधारा से अलगाव। इस अलगाव की वजह से ही आदिवासी समाजों के भीतर मुख्यधारा के समाज की तरह जातिगत भेदभाव का प्रचलन नहीं रहा है। लेकिन समय के साथ-साथ ज्यों-ज्यों मुख्यधारा के समाज की पहुँच आदिवासी इलाकों तक हुई इनके शोषण की कहानी भी शुरू हो गई। आदिवासियों द्वारा मुख्यधारा की सत्ता से लड़ी जा रही जल, जंगल और जमीन की लड़ाई इस शोषण का प्रतिकार है।

भारत में जाति-व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई की एक लम्बी परम्परा रही है जिसमें बुद्ध, कबीर, रैदास, ज्योतिबा फुले, डॉ अंबेडकर और महात्मा गांधी जैसी हस्तियाँ शामिल हैं। इन तमाम लोगों के संघर्षों से जाति व्यवस्था भले ही खत्म न हुई हो लेकिन इसकी जकड़न जरूर ढ़ीली हुई है। गौरतलब बात यह है कि जाति व्यवस्था की इस जकड़न को अगर किसी ने सबसे ज्यादा कमजोर किया है तो वह है – भारत का संविधान। भारतीय संविधान न सिर्फ किसी भी तरह के भेदभाव का निषेध करता है बल्कि वंचित तबकों को न्याय, अवसर की समानता और संसाधनों में हिस्सेदारी की भी बात करता है। वंचित तबकों को मिलने वाला 'आरक्षण' संविधान प्रदत्त एक ऐसी व्यवस्था है जो अवसरों और संसाधनों के न्यायपूर्ण बंटवारे की बुनियाद पर टिकी है।

भारत का संविधान सामाजिक रूप से भेदभाव के शिकार इन समूहों को सशक्त करने के लिए कुछ जरूरी कदम उठाता है जिसमें सबसे अहम है – आरक्षण। संविधान बनने के बाद यानी 1950 से ही दलित और आदिवासी समाज को सरकारी नौकरियों और सरकारी शिक्षण संस्थानों में क्रमशः 15 फीसदी और 7.5 फीसदी का आरक्षण दिया जा रहा है। 1990 के दशक में मंडल कमीशन की अनुशंसा पर पिछड़े वर्ग को भी आरक्षण देने की बात शुरू हुई और आगे चलकर पिछड़े वर्ग के तहत आने वाली जातियों को 27.5 फीसदी का आरक्षण

दे दिया गया। अभी हाल में ही 2019 में केंद्र सरकार ने सामान्य वर्ग के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए EWS (Economically Weaker Section) कोटे के नाम से 10 फीसदी के आरक्षण का प्रावधान किया है।

ये तो रही तथ्यात्मक बातें जिसे जानना हम सबके लिए बहुत जरूरी है। गौरतलब बात यह है कि आरक्षण पर जब भी बात होती है आमतौर पर दो गुट बन जाते हैं - एक आरक्षण समर्थक और दूसरा आरक्षण विरोधी। दोनों वर्गों के अपने-अपने तर्क और अपनी-अपनी समझदारी होती है। अक्सर यह देखने को मिलता है कि आरक्षण समर्थक अवसरों और संसाधनों के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए अपने तर्कों को सिर्फ आरक्षण की व्यवस्था तक सीमित रखते हैं, मानो सिर्फ आरक्षण से ही वह वंचित तबकों को उनका वाजिब हक दिला देंगे। वहीं दूसरी तरफ आरक्षण विरोधियों का एक प्रमुख तर्क यह होता है कि जब शुरुआत में आरक्षण की सीमा दस वर्षों तक के लिए तय की गई थी तो उसे आगे क्यों बढ़ाया गया? इस तर्क के आधार पर वे आरक्षण को खत्म करने की वकालत करते हैं।

हमारी सोच इन दोनों तरह के लोगों से अलग है। हमारा मानना है कि हजार सालों की गैर-बराबरी को सिर्फ दस सालों के आरक्षण से खत्म नहीं किया जा सकता इसलिए अभी वह वक्त नहीं आया है कि आरक्षण को हटा दिया जाए, लेकिन इसके साथ ही इसमें कुछ ऐसे संशोधन किये जाने की जरूरत है जिससे हर वर्ग के सबसे जरूरतमंद को इसका लाभ मिल सके। आरक्षण का विरोध करने वाले साथियों से मैं कहना चाहता हूँ कि इस देश में संविधान लागू होने से पहले हजारों सालों से एक खास तबके को वर्ण व्यवस्था के आधार पर विशेषाधिकार के रूप में आरक्षण मिलता आया है, हम उसका विरोध क्यों नहीं करते? आरक्षण का समर्थन करने वाले साथियों से भी मैं यह कहना चाहता हूँ कि सिर्फ आरक्षण से कुछ नहीं होगा। अगर आप ये सोचते हैं कि सिर्फ आरक्षण के दम पर आप वंचित वर्ग के लोगों की जिंदगी को बेहतर कर सकते हैं तो मेरा ख्याल है आप गलत सोच रहे हैं। जो एक बड़ी आबादी अवसरों और संसाधनों के न्यायपूर्ण बँटवारे से वंचित रह गई है, आरक्षण उसके लिए 'ऊँट के मुंह में जीरा' के बराबर है। इसलिए अब समय आ गया है कि हम सब मिलकर

इसके लिए कुछ और रास्तों की तलाश करें ताकि भारतीय समाज की इस भेदभाव रूपी कुरूपता को जितनी जल्दी हो सके, खत्म कर सकें।

एक विचार के रूप में सामाजिक न्याय का सिद्धान्त समाज में व्याप्त हर तरह के भेदभाव को खारिज करता है। चाहे वह भेदभाव रंग के आधार पर हो, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो, धर्म के आधार पर हो, संप्रदाय के आधार पर हो, जाति के आधार पर हो, क्षेत्र के आधार पर हो, भाषा के आधार पर हो या फिर किसी अन्य सामाजिक पहचान के आधार पर हो – सामाजिक न्याय इन भेदभावों के खिलाफ न्याय की एक ऐसी अवधारणा पेश करता है जिसके तहत हर इंसान को चाहे वह किसी भी सामाजिक पहचान से जुड़ा हो, को भेदभाव से मुक्त एक बराबरी, भाईचारा और न्यायपूर्ण समाज में रहने के हक को रेखांकित किया जा सके।

भारत में सामाजिक न्याय की लड़ाई की एक लम्बी फेहरिस्त रही है जिसकी परम्परा बुद्ध, कबीर, रैदास, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, फातिमा शेख, राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर, रमाबाई, महात्मा गांधी आदि से जुड़ती है। जब हम आजादी की लड़ाई को देखते हैं तो पाते हैं कि एक तरफ अंग्रेजों के खिलाफ राजनैतिक और आर्थिक आजादी की लड़ाई चल रही थी तो वही दूसरी तरफ सामजिक भेदभाव के खिलाफ सामाजिक बंधुता और समरसता की लड़ाई भी चल रही थी। इसी का परिणाम है कि आजादी के बाद भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय को एक जरूरी मूल्य के तौर पर शामिल किया गया।

भारत में सामाजिक न्याय की लड़ाई का एक बड़ा हिस्सा सामाजिक न्याय की राजनीति से जुड़ता है। आजादी के बाद खासकर नब्बे के दशक से सामाजिक न्याय की राजनीति का एक मजबूत अध्याय शुरू होता है। सामाजिक न्याय की यह राजनीति, जो चली तो थी सामाजिक भेदभाव को खत्म करने और हाशिये के लोगों को उनका वाजिब हक दिलाने के लिए लेकिन समय के साथ-साथ यह राजनीति भी बाकी राजनीतिक धड़ों की तरह तमाम विसंगतियों की शिकार हो गई। आज सामाजिक न्याय के नाम पर राजनीति करने वाली पार्टियां परिवारवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद और भ्रष्टाचार के जाल में इस कदर उलझी हुई हैं कि सामाजिक न्याय का लक्ष्य उनके लिए दूर की कौड़ी साबित हो रही है।

मेरा यह मानना है कि सामाजिक न्याय के लक्ष्यों की प्राप्ति सिर्फ पार्टी या दल के दम पर नहीं की जा सकती बल्कि इसके लिए समाज के सभी वर्गों को आगे आना होगा और बिना जाति, धर्म, लिंग, भाषा और क्षेत्र देखे उन तमाम लोगों की मदद करनी होगी जो मुख्यधारा के विकास की प्रक्रिया से छूट गए। अगर आप यह मानते हैं कि यह देश सबका है तो आपको यह मानने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि जो गरीब हैं, जो मजदूर हैं, जो किसान हैं, जो दलित हैं, जो आदिवासी हैं, जो पिछड़े हैं, जो अल्पसंख्यक हैं, जो महिलायें हैं, वो भी इसी देश के ही नागरिक हैं, वो भी माँ भारती के ही बेटे-बेटियाँ हैं। हमें एक ऐसी व्यवस्था बनानी होगी जो जाति व्यवस्था के उलट किसी से कोई भेद-भाव नहीं करती हो, जो सबको एक बराबरी, एक समान नजर से देखती हो, जो सबकी तरक्की का रास्ता खोलती हो, जो सामाजिक न्याय का रास्ता खोलती हो।

आमतौर पर सामाजिक न्याय की बात होती है तो कुछ लोग कहते हैं कि वर्तमान में आरक्षण से न्याय हो रहा है, कुछ लोग कहते हैं कि आरक्षण से अन्याय हो रहा है और कुछ लोगों का दिमाग जाति व्यवस्था के माध्यम से हो रहे अन्याय की तरफ जाता है। कुछ लोगों का मन व मस्तिष्क थोड़ा-सा जोर देने पर इतिहास के पन्नों पर जाता है कि इतिहास में समाज में कब और किसके साथ अन्याय हुआ। भारतीय संविधान में और वर्तमान भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। लेकिन मैं थोड़ा आप लोगों का दिमाग तीन उन बिंदुओं की तरफ ले जाना चाहता हूँ जिस पर आमतौर पर हम आज चर्चा करना पसंद नहीं करते हैं। पहली बात तो यह कि सारे पक्ष-विपक्ष के बावजूद क्या हम सब लोगों को नहीं लगता कि न्याय सबको मिलना चाहिए। चाहे अन्याय किसी भी व्यक्ति के द्वारा, किसी भी समाज के द्वारा और किसी व्यवस्था के द्वारा किसी के साथ भी हो रहा है, तो वह गलत है। वह अन्याय चाहे दलित के साथ हो रहा हो, चाहे सवर्ण के साथ हो रहा हो, चाहे अगड़े के साथ हो रहा हो, चाहे पिछड़े के साथ हो रहा हो, चाहे बंगाली के साथ हो रहा हो, चाहे गुजराती के साथ हो रहा हो, चाहे स्त्री के साथ हो रहा हो, चाहे पुरुष के साथ हो रहा हो, चाहे बुजुर्ग के साथ हो रहा हो, चाहे बच्चे के साथ हो रहा हो, वह गलत है। जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा जितनी तरह की विविधता हम देखते हैं, अगर किसी के भी साथ

अन्याय हो रहा है तो वह ठीक नहीं है और उसके न्याय की गारंटी का रास्ता खुलना चाहिए।

अब प्रश्न उठता है कि न्याय कौन देगा? अब तक तीन तरह की सत्ता की परम्परा रही है जिससे न्याय देने की उम्मीद की जा सकती है। पहली – धार्मिक सत्ता, जिसे अधिकतम लोग मानते हैं। धार्मिक सत्ता दावेदारी करती है कि धर्म की शरण में आ जाओ सबको न्याय मिलेगा, सबको मुक्ति मिलेगी। लेकिन हम कई बार देखते हैं की वहाँ भी सबको न्याय और मुक्ति नहीं मिल पाती।

दूसरी न्याय की परम्परा है – हमारे समाज की ताकत। आमतौर पर हम सभी लोग समाज के अंदर जाति व्यवस्था की बात करते हैं। आज जाति के अलंबरदार यह दावेदारी करते हैं और यह भ्रम पैदा करते हैं कि हम अपनी जाति के लोगों के लिए न्याय की बात करते हैं। सवर्ण जातियों के जो लोग आज न्याय की मांग कर रहे हैं, वे यह नहीं समझना चाहते कि दलित और पिछड़ी जातियों के साथ सदियों से अन्याय हुआ है। वे सभी आज आरक्षण व्यवस्था आने पर अपने साथ अन्याय महसूस कर रहे हैं। आज सवर्ण समाज को लगता है कि आरक्षण से हमारे साथ अन्याय हो रहा है, हमारी प्रतिभाओं को दबाया जा रहा है। दूसरी तरफ तमाम दलित समाज, पिछड़ा समाज को लगता है कि हमारे साथ सदियों से अन्याय किया गया है। हमारे साथ जानवर से बदतर व्यवहार किया गया।

लेकिन एक बात ठंडे दिमाग से सोचनी चाहिए कि जो सवर्ण समाज अन्याय की बात कर रहा है, क्या अपने समाज के साथ न्याय करने को तैयार है? आप अपने मोहल्ले में जाइए या भारत के किसी गांव में जाइए या जहाँ से आपका जुड़ाव रहा हो, किसी ब्राह्मण की बस्ती में जाइए, किसी क्षत्रिय की बस्ती में जाइए या किसी दलित की बस्ती में जाइए। गांव में अलग-अलग टोले हैं, एक ब्राह्मण की बस्ती में रहने वाले सभी ब्राह्मणों के साथ क्या ब्राह्मण समाज न्याय करता है? क्या एक क्षत्रियों के गांव में रहने वाले सभी क्षत्रियों को न्याय मिलता है। एक दलित बस्ती में रहने वाले सभी दलितों के साथ क्या न्याय हो रहा है? एक पिछड़ा समाज के गांव में रहने वाले पिछड़े समाज के लोग एक पिछड़े के साथ न्याय करते हैं? क्या जाटव समाज के लोग सभी जाटव के साथ न्याय करता है? क्या यादव समाज सभी यादवों के साथ न्याय करने को तैयार है? बहुत कम

लोग न्याय करने के लिए तैयार हैं। दूसरी न्याय की परम्परा है – हमारे समाज की ताकत। आमतौर पर हम सभी लोग समाज के अंदर जाति व्यवस्था की बात करते हैं। आज जाति के अलंबरदार यह दावेदारी करते हैं और यह भ्रम पैदा करते हैं कि हम अपनी जाति के लोगों के लिए न्याय की बात करते हैं। सवर्ण जातियों के जो लोग आज न्याय की मांग कर रहे हैं, वे यह नहीं समझना चाहते कि दलित और पिछड़ी जातियों के साथ सदियों से अन्याय हुआ है। वे सभी आज आरक्षण व्यवस्था आने पर अपने साथ अन्याय महसूस कर रहे हैं। आज सवर्ण समाज को लगता है कि आरक्षण से हमारे साथ अन्याय हो रहा है, हमारी प्रतिभाओं को दबाया जा रहा है। दूसरी तरफ तमाम दलित समाज, पिछड़ा समाज को लगता है कि हमारे साथ सदियों से अन्याय किया गया है। हमारे साथ जानवर से बदतर व्यवहार किया गया।

तीसरी शक्ति है, जो न्याय दे सकती है – राजनैतिक व्यवस्था। जब धार्मिक सत्ता से न्याय नहीं मिल पाया, समाज से न्याय नहीं मिल पाया तब वहाँ से एक आधुनिक चिंतन पैदा हुआ कि एक ऐसी व्यवस्था की जरूरत है जो ऐसे सभी लोगों को न्याय दे सके जिनके साथ अन्याय हुआ है और वहां से राजसत्ता की उत्पत्ति हुई। वहाँ से सरकारों की उत्पत्ति हुई। भारतीय संविधान के माध्यम से सत्ता और सरकार के द्वारा न्याय देने की कई व्यवस्थाएं की गई हैं और उन व्यवस्थाओं का खासकर भारतीय समाज में प्रभाव भी पड़ा है। आज भारतीय समाज के अंदर अगर दलित-पिछड़े समाज को थोड़ी-बहुत राहत मिली है, तो यकीन मानिए कि यह संविधान और भारत के भविष्य के लिए शुभ संकेत है क्योंकि कहीं न कहीं जिनके साथ सदियों से अन्याय हुआ उनको थोड़ा सा तो न्याय मिला है।

भारतीय समाज के अंदर आरक्षण की व्यवस्था ने कुछ समाधान किया है, लेकिन केवल आरक्षण से भारतीय समाज के अंदर न्याय की गारंटी नहीं दी जा सकती है। क्योंकि अगर आप विश्लेषण करने की कोशिश करेंगे तो पाएंगे कि आज की तारीख में जितने भी साधन हैं चाहे वे धार्मिक सत्ता के द्वारा दिए गए हो हों, चाहे वे जातीय सत्ता के द्वारा दिए गए हों, चाहे राजनैतिक सत्ता के द्वारा दिए गए हों, चाहे वे संविधान द्वारा दी गई आरक्षण की व्यवस्था द्वारा हो या चाहे

वे संविधान में प्रस्तावना से लेकर के जितने भी तमाम कानून बने हैं, उनके द्वारा दिए गए हों, वे सब मिलकर भी किसी भी जाति व समाज के लोगों को पूरी तरह से न्याय देने में सक्षम नहीं हैं, इसलिए उनका न्याय अधूरा है।

इस बात को ठीक से सोचना है कि सक्षम बनाने के लिए आरक्षण व्यवस्था के सामाजिक रूप से लोगों को अवसर मिले हैं, लेकिन सभी दलितों को नहीं मिले हैं और न मिल सकते हैं। आरक्षण व्यवस्था से पिछड़ों को आगे बढ़ने के अवसर तो मिले हैं, लेकिन सभी लोगों को अवसर नहीं मिले हैं और न मिल सकते हैं। ये जो भी व्यवस्था आज चल रही है, ये व्यवस्था समाज के दलित, पिछड़े, महिलाओं, अल्पसंख्यकों, अलग-अलग जाति एवं धर्म के लोगों को न्याय देने में आंशिक रूप से ही सफल हुई है। और इससे अधिक इसकी क्षमता नहीं है।

आज एक नई चीज खड़ी करने की कोशिश हो रही है कि आज जो व्यवस्था है वह तुम्हारे साथ अन्याय कर रही है, इसके खिलाफ खड़े हो जाओ। पूरे देश के अंदर प्रचार चल रहा है कि तुम्हारे साथ अन्याय हो रहा है, इसके खिलाफ आवाज उठाओ। दूसरा कह रहा है कि तुम्हारे साथ अन्याय हुआ था इसलिए खड़े हो जाओ। खड़े होकर करना क्या है? हमारे लिए प्रचार -प्रसार करो, हमारे लिए वोट इकट्ठा करो, हमारी कुर्सी और सत्ता को स्थापित करो, न्याय तुम्हें मिल जाएगा। मैं बहुत विनम्रता से आपसे कहना चाहता हूँ कि इस रास्ते से भारत के अंदर सामाजिक न्याय की गारंटी अब नहीं हो सकती।

इसलिए हमें सोचना पड़ेगा कि किस तरह सामाजिक न्याय की गारंटी सुनिश्चित कर पाना संभव है। मुझे लगता है कि यह संभव है और इसके लिए नई चेतना व नए विचार की जरूरत है। उस नई सोच के आधार पर एक नए सिरे से सामाजिक न्याय की गारंटी पर चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार एक ऐसी व्यवस्था बन सकती है जिसमें किसी भी प्रकार से अन्याय नहीं होगा। यदि हम एक नई चेतना विकसित करेंगे तो नई सत्ता विकसित होगी और नई सत्ता से समाधान विकसित होगा और सभी को सामजिक न्याय मिल सकेगा। उसके लिए इस समाज के अंदर सकारात्मक राष्ट्रवाद की वैचारिक चेतना की जरूरत है। इस

प्रकार सामाजिक न्याय की गारंटी देश के सभी नागरिकों के सुख-शांति, अमन-चैन का रास्ता देती है। जरा सोचिये अगर गांव के अंदर जाति के आधार पर जो भेदभाव है, वह खत्म होता है, तो गांव के सुख-शांति से आगे बढ़ने का रास्ता साफ होता है।

अगर हम सभी भारत का विकास चाहते हैं और अपना विकास चाहते हैं तो सभी लोगों की सहभागिता जरूरी है। इस देश के अंदर सबके विकास के रास्ते की गारंटी हो सकती है, अगर हम सब लोगों में एक सकारात्मक चेतना पैदा हो कि सामाजिक न्याय जितना जरूरी हमारे लिए है, उतना ही दूसरे के लिए भी जरूरी है। इस बात को महसूस करने की जरूरत है कि अगर 70 सालों में हमें इतना दर्द हो रहा है, तो पिछले कई सौ सालों से जिस वर्ग का शोषण हुआ है उसे कितना दु:ख हुआ होगा। ये महसूस हमें भी करना पड़ेगा और दूसरों को भी करना पड़ेगा और ये महसूस उनको भी करना पड़ेगा जिनमे साथ कई सौ सालों से अन्याय हुआ है। यदि हम किसी दलित जाति के मोहल्ले में सर्वेक्षण करें तो पता चलता है कि इस आरक्षण का लाभ सौ में से लगभग पांच लोगों को ही मिल पाया है और तर्क दिया जाता है की इन 5 परिवारों के न्याय को खत्म कर दो तो 95 को न्याय मिल जाएगा, सब बराबर हो जाएंगे। मेरा इससे अलग चिंतन है कि भारतीय समाज, भारतीय राजनीति और भारतीय चिंतन के जो प्रवक्ता हैं, उन्हें इस बात पर सोचने की जरूरत है कि आज चुनौती हमारे सामने है कि इन 5 लोगों को जो न्याय मिला है इनके साथ -साथ 95 लोगों के परिवारों के लिए न्याय का रास्ता कैसे ढूंढा जाए। मेरा मानना है कि इसके दो रास्ते हो सकते हैं। पहला यह कि इस देश के अंदर हर बच्चे को सरकारी खर्चे पर उच्च गुणवत्ता की शिक्षा की गारंटी दी जाए। अंधेरे में नई रोशनी का पहला दरवाजा सबके लिए उच्च गुणवत्ता की शिक्षा के गारंटी से खुलना शुरू होता है। दूसरा रास्ता देश के अंदर हर नागरिक को एक न्यूनतम आर्थिक न्याय की गारंटी होनी चाहिए। क्योंकि मेरा जो चिंतन है वह ये कहता है कि सामाजिक गैर-बराबरी में आर्थिक गैर-बराबरी का एक अहम योगदान होता है। पूरा योगदान नहीं होता है लेकिन एक अहम योगदान होता है।

यहाँ यदि आर्थिक गैर-बराबरी को खत्म करना है तो इसके लिए भारत को आर्थिक रूप से मजबूत भी बनाना होगा। इसका समाधान पर्यावरण अनुकूल तथा क्षेत्र विशिष्ट तकनीक का आविष्कार करके हो सकता है। क्योंकि इस दुनिया के अंदर भारत से ज्यादा विविधता से भरा कोई देश नहीं है और भारत इस काम को कर सकता है। यकीन मानिए इस प्रकार प्राचीन समय से जो भारत देश की सोच रही है, परिकल्पना रही है - 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःख भाग्भवेत्'। उस सपने को भारत पूरा करने की तरफ बढ़ सकता है और मुझे उम्मीद है कि यदि हम सब अपने चिंतन को, अपनी आत्म शक्ति को सकारात्मक दिशा में मोड़ते हैं तो उस रास्ते को हम खोल सकते हैं।

❑❑❑

अध्याय
6

बेरोजगारी की समस्या का भारतीय अर्थव्यवस्था में समाधान

भारत में बेरोजगारी की समस्या और उसके समाधान को लेकर आज पूरा देश चिंतित है। हमारा देश बेरोजगारी के एक ऐसे भयावह हालात से गुजर रहा है, जिसमें न सिर्फ नए लोगों को रोजगार नहीं मिल पा रहा है बल्कि जिन लोगों के पास रोजगार था, वो भी अपने रोजगार खो रहे हैं। यह स्थिति सिर्फ प्राइवेट या असंगठित क्षेत्रों की ही नहीं है बल्कि सरकारी संस्थाओं में काम कर रहे लोगों की नौकरियाँ भी खतरे से बाहर नहीं हैं। मौजूदा सरकार जिस तरह सरकारी उपक्रमों और संस्थाओं को निजी कंपनियों के हाथों बेच रही है, उससे रोजगार का संकट और भी गहरा होता जा रहा है।

कोरोना काल में बेरोजगारी दर 22 फीसदी तक पहुँच गयी है, जो आजाद भारत के इतिहास में सबसे अधिक बेरोजगारी दर है। जीडीपी की विकास दर नेगेटिव 24 फीसदी पहुँच गयी है। इससे खराब स्थिति में भारत की अर्थव्यवस्था आज तक कभी नहीं रही है। जीडीपी गिरने का सबसे ज्यादा नुकसान लेबर इंटेंसिव सेक्टरों में हुआ है जैसे कृषि क्षेत्र, निर्माण क्षेत्र, कपड़े और चमड़े का उद्योग आदि। इसका सीधा असर करोड़ों लोगों की नौकरियों पर हुआ है। साल 2020 में अप्रैल से अगस्त के महीने में 2 करोड़ से ज्यादा लोगो को अपनी नौकरी गंवानी पड़ी है।

इस भारी आर्थिक संकट के लिए कोरोना वायरस को बलि का बकरा नहीं माना जा सकता। कोरोना काल के पहले से ही बेरोजगारी का संकट और डगमगाती अर्थव्यवस्था का सामना भारत के लोगो को करना पड़ रहा है। पिछले कई सालो से भारत की जीडीपी की विकास दर धीरे-धीरे गिरती जा रही थी और अब एकदम से गिरकर नेगेटिव पहुँच गयी है। कोरोनो द्वारा उत्पन्न संकट

से एक बात तो साफ हो गयी कि देश को चलाने और आगे बढ़ाने वाले मुख्यत: सिर्फ दो ही वर्ग है–किसान और मजदूर। 90 फीसदी भारत किसानों और मजदूरों से ही बना है। जब इन दोनों के काम में समस्या आती है तो पूरे देश में संकट पैदा हो जाता है। सरकार के कोविड–19 से संबन्धित फैसलों से इन्हीं दोनों वर्ग– किसान और मजदूर को सबसे ज्यादा तकलीफों का सामना करना पड़ा है।

श्रमिकों के रोजगार छीनकर उन्हें जबरन कार्य से बेदखल किया गया। मजदूरों को सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर अपने गाँव जाने के लिए मजबूर किया गया। सरकार की खराब नीतियों और प्रतिक्रियाओं के कारण सैकड़ों श्रमिकों को अपनी जान गंवानी पड़ी है। कोविड–19 की आड़ में भारत में कई राज्य सरकारों ने लगभग दो से तीन वर्षों के लिए श्रम कानूनों को कमजोर करने का प्रस्ताव भी पारित किया है। राज्य सरकारों के इस कदम से मजदूरों के लिए संकट और भी बढ़ गया है, जो पहले से ही इस महामारी से सबसे ज्यादा प्रभावित हैं।

इन श्रम कानूनों को हटाने का मुख्य कारण विदेशी निवेश को आकर्षित करना, व्यापार को आसान बनाना और नियोक्ताओं की भूमिका को मजबूत करना बताया जाता है। उद्योगपतियों का गुट इस कदम की प्रशंसा करता है कि यह राजस्व और उत्पादन को बढ़ावा देगा। असलियत में उद्योग करने में आसानी और उत्पादन में बढ़ावा देने के नाम पर, सरकार ने उन सभी मजदूरों के पक्ष में लाभों को खत्म कर दिया जो पिछले 70 वर्षों में मजदूर वर्ग ने लड़कर हासिल किये हैं। श्रम कानून ऐसे ही नहीं बन गए थे, इनके लिए अलग–अलग समय पर संघर्ष किया गया था। ये संशोधन भले ही भारत में व्यापार को आसान बनाने में मदद कर सकें, लेकिन लम्बे समय में अर्थव्यवस्था के लिए इनके आर्थिक परिणाम बहुत गंभीर और चिंताजनक होंगे। मजदूरों को नुकसान पहुँचा कर देश की अर्थव्यवस्था कभी आगे नहीं बढ़ सकती। मजदूरों को उनकी न्यूनतम आय नहीं मिलेगी तो खपत कम होगी और अर्थव्यवस्था में मंदी आएगी। इन परिवर्तनों से बाल श्रम में वृद्धि, अनौपचारिकीकरण और श्रमिकों को बुनियादी मानव अधिकारों से वंचित रखना जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

इसके साथ केन्द्र सरकार ने मौजूदा 44 श्रम कानूनों को हटाकर चार श्रम संहिताएँ (लेबर कोड) लागू कर दी हैं। इन कोडों के करीबी विश्लेषण से पता

चलता है कि ये सिर्फ उद्योगपतियों के मुनाफे को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं और इनके लागू होने से श्रमिकों के शोषण को बढ़ावा मिलेगा। भारत में नए कानूनों को अमीर वर्ग की सहूलियत और फायदे को ध्यान में रखकर ही क्यों बनाया जाता है? इस बात पर हमें और गहरा अध्ययन करने की जरूरत है।

भारत में धन की कमी नहीं है लेकिन भारत के लोगों के हाथों में खर्च करने को धन न होना एक बहुत बड़ी कमी है। भारत में आर्थिक असमानता लगातार बढ़ रही है। हाल ही में आई एक रिपोर्ट के अनुसार सबसे अमीर 1 फीसदी भारतीयों के पास भारत के सबसे गरीब 70 फीसदी लोगों की चार गुना संपत्ति है। इसका मतलब यह हुआ कि भारत के लगभग 100 अरबपति, भारत के 100 करोड़ लोगों की चार गुना संपत्ति रख कर बैठे हैं। यह पैसा भारतीय अर्थव्यवस्था के वार्षिक बजट से भी अधिक है। इस असमानता का मुख्य कारण लगातार बढ़ रहा भ्रष्टाचार, मजदूरों के शोषण और रोजगार की असुरक्षा है।

वर्तमान सरकारी शासन के प्रयासों को करीब से देखा जाए तो पता चलता है कि सरकार द्वारा सबसे अमीर वर्ग का समर्थन करने के लिए लगातार प्रयास किए गए हैं, जिससे आर्थिक असमानता और अन्याय में वृद्धि हुई है। पिछले एक साल में 68000 करोड़ लोन सबसे अमीर लोगों के माफ कर दिए गये जो कि सुर्खियों में नहीं है लेकिन किसानों के लोन माफी और न्यूनतम आर्थिक गारंटी जैसी नीतियों की जब भी बात उठती है तो उनको अर्थशास्त्री खराब नीति कहकर खारिज कर देते हैं। यह सब हमें अर्थशास्त्री थॉमस पिकेट्टी की एक बात याद दिलाता है कि भारत ब्रिटिश राज से निकलकर अब कॉर्पोरेट राज की ओर बढ़ता नजर आ रहा है।

भारत में मेहनत करके भी श्रमिक 5000 से 8000 रुपए महीना में काम करने के लिए क्यों मजबूर हैं? भारत के किसान आत्महत्या क्यों कर रहे हैं? सरकार लघु उद्योग अर्थव्यवस्था को क्यों विकसित नहीं कर रही है? जंगलों पर आधारित अर्थव्यवस्था को क्यों नहीं विकसित किया जा रहा है? आज जो हमारी अर्थव्यवस्था खराब है, उसका मुख्य कारण है कि हमारी आर्थिक नीतियाँ स्वतंत्र नहीं हैं। आर्थिक रूप से भारत आज भी गुलाम देश है। भारत की पूरी अर्थव्यवस्था को वर्ल्ड ट्रेड आर्गनाइजेशन (WTO) और गैट (GATT) नियंत्रित करते हैं।

भारत के लोगों की जो भारतीय संसद है, उसे यह हिम्मत पैदा करने कि जरूरत है कि वह दुनिया के दबाव में न आकर आर्थिक नीतियाँ बनाए। भारत को सबसे पहले यह घोषणा करनी होगी कि वह अपने दम पर अपने लोगों के लिए अपनी अर्थनीति विकसित कर सकता है। जब तक भारत के अन्दर अर्थनीति बनाने की आजादी नहीं पैदा होगी, तब तक भारत के अन्दर पुनर्संरचना का रास्ता नहीं खुल सकता। भारत के अन्दर हम जो कुछ भी देखते हैं, चाहे हमारी शिक्षा नीति बनती है, औद्योगिक नीति बनती है, विदेश नीति बनती है, जल-जंगल-जमीन की नीतियाँ बनती हैं या हमारी टेक्नोलॉजी को लेकर नीति बनती है, भारतीय सरकार स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाती और नीतियाँ बनाने के लिए बाहरी दबाव की शिकार है।

बेरोजगारी और आर्थिक संकट से निपटने के लिए भारत को आर्थिक विकास के वैकल्पिक मॉडल की जरूरत है। भारत की बेरोजगारी संकट के समाधान के लिए 'राष्ट्रीय रोजगार नीति' बनाने की जरूरत है। इस रोजगार नीति को समझाने से पहले मैं आपको भारत कि अर्थव्यवस्था के बारे में कुछ समझाना चाहता हूँ।

भारतीय अर्थव्यवस्था तीन प्रकार की आर्थिक गतिविधियों से बनी है:

1. कृषि क्षेत्र
2. उत्पादन क्षेत्र
3. सर्विस क्षेत्र

सभी तीन क्षेत्रों में औपचारिक और अनौपचारिक कर्मी हैं। अनौपचारिक क्षेत्र में 90 फीसदी से अधिक भारतीय कर्मी काम करते हैं। दुनिया की कोई भी अर्थव्यवस्था विकास के एक पथ से होकर गुजरती है। जब कृषि क्षेत्र में विकास शुरू होता है तो कृषि में अधिक लाभ प्राप्त करने के बाद बड़ी आबादी उत्पादन क्षेत्र में चली जाती है और उत्पादन क्षेत्र में अधिक लाभ प्राप्त करने के बाद बड़ी आबादी सर्विस क्षेत्र में चली जाती है। दुनिया की सभी बड़ी अर्थव्यवस्थाओं ने इस विकास मार्ग का अनुसरण किया है।

इन सब के विपरीत भारत की अर्थव्यवस्था ने विकास का एक बहुत ही अलग रास्ता लिया जहाँ आजादी के बाद के तीन दशकों के बीच कृषि क्षेत्र में

थोड़ा ही लाभ प्राप्त हुआ था और भारत की अर्थव्यवस्था उत्पादन क्षेत्र की ओर बढ़ गयी। उत्पादन क्षेत्र का विकास दर और उत्पादन क्षेत्र में काम करने वाले लोग पिछले 40 वर्षों से स्थिर ही हैं। उत्पादन क्षेत्र की निरन्तर गिरावट के चलते भारत की अर्थनीति बनाने वाले सर्विस क्षेत्र की ओर मुड़ गई। 90 के दशक में 'न्यू इकोनोमिक पालिसी' आई जिसके बाद से हमारी अर्थव्यवस्था सर्विस सेक्टर में निवेश को बढ़ावा देने लगी और उत्पादन क्षेत्र को पीछे छोड़ दिया। सर्विस क्षेत्र के विकास की ओर बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं के साथ प्रमुख समस्या यह है कि सर्विस हमेशा उत्पादों पर आधारित होती है और इसके लिए उत्पादों का उत्पादन महत्वपूर्ण होता है। आजकल सर्विस क्षेत्र में जो रोजगार मिल रहा है वो भी कॉन्ट्रैक्चुअल और अनौपचारिक है। टेक्नोलॉजी और उत्पादन दोनों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया और जो टेक्नोलॉजी विकसित हुई वो श्रमिकों के पक्ष में नहीं थी। इसी वजह से आज जो हालात हैं, भारत जो एक श्रमिक बाहुल्य देश है, पूंजी और टेक्नोलॉजी से बनने वाली वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है।

बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए भारत में एक राष्ट्रीय रोजगार नीति लागू करने का प्रस्ताव मैं आप लोगों के सामने रखता हूँ। राष्ट्रीय रोजगार नीति को भारत में कृषि, उत्पादन और सर्विस क्षेत्र के लिए डिजाइन और लागू करने की आवश्यकता है। अब सवाल यह खड़ा होता है कि इस पॉलिसी को कैसे बनाया जाएगा। हम लोगों को राष्ट्रीय रोजगार नीति के इन 6 स्तम्भों पर काम करना होगा –

1. कृषि क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति
2. अशिक्षित और अनौपचारिक क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति
3. शिक्षित और औपचारिक क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति
4. महिलाओं के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति
5. स्वरोजगार और कारीगरों के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति
6. राष्ट्रीय रोजगार नीति के अनुसार कौशल नीति

1. कृषि क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीतिः यह देश कृषि प्रधान देश है। किसानों को हटा दोगे तो यह देश नहीं बचता। जब पहले हमारा कृषि आधारित

समाज गाँव में रहता था। गाँव के अंदर जातीय संरचना थी जिसके कारण सभी वर्ग समान तरीके से आगे नहीं बढ़ पाए। यदि उस समय की आर्थिक व्यवस्था को आप देखते हैं तो उसमें बहुत गरीबी थी और आमदनी भी बहुत कम थी। इस अर्थव्यवस्था में ऐसे वर्ग थे जो खेत में काम नहीं करते थे जैसे – जमींदार। क्योंकि उनका जमीन पर मालिकाना हक इतना बड़ा था कि वह खुद काम करना ही नहीं चाहते थे। उनके लिए काम करना अपनी इज्जत को थोड़ा नीचे करने के बराबर था। उस अर्थव्यवस्था में जो गरीब किसान था वो आज भी उस व्यवस्था से बाहर नहीं निकल पाया है।

इस जमींदारी व्यवस्था से भारत को आज भी छुटकारा नहीं मिल पाया है। वर्तमान समय में एक दलाल वर्ग आ गया है जो किसानों द्वारा बनाया गया सामान 10 फीसदी में खरीद कर उसे आगे 100 फीसदी में बेचता है। किसानों की समस्याओं के समाधान के वादे सरकारें दशकों से कर रही हैं लेकिन किसी भी सरकार ने उनकी समस्या का हल नहीं निकाला। किसान अपनी फसल पर मेहनत करते हैं, पसीना बहाते हैं, खेती करते हैं। किसानों को उनकी फसल के दामों की गारंटी मिलनी चाहिए। राष्ट्रीय रोजगार नीति के तहत मिनिमम सपोर्ट प्राइस को भारत के हर राज्य में लागू करना होगा। स्वामीनाथन समिति की रिपोर्ट जो 2006 मे बनी थी उसको आज तक भारत के हर राज्य में लागू नहीं किया गया है।

कृषि संकट का मुख्य कारण है कम उत्पादकता। 44 फीसदी लोग कृषि क्षेत्र में काम करते हैं और जीडीपी का केवल 15 फीसदी हिस्सा कृषि क्षेत्र से आता है। उत्पादकता बढ़ाने के लिए न सिर्फ किसान को जागरुक होने की जरूरत है बल्कि एक सोची समझी रणनीति के साथ कृषि क्षेत्र में कृषि रोजगार नीति लागू करने कि जरूरत है। चीन का इतिहास देखा जाये तो उद्योग और सर्विस सेक्टर के मुकाबले कृषि क्षेत्र में विकास की मदद से गरीबी हटाना ज्यादा प्रभावी साबित हुआ था। मिनिमम सपोर्ट प्राइस तय करना, मिनिमम सपोर्ट प्राइस पूरे देश में लागू करना और साथ में सब्सिडी देने से कृषि क्षेत्र कि स्थिति सुधारी जा सकती है। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संचालन को बढ़ावा मिलेगा और ग्रामीण औद्योगीकरण को बढ़ावा मिलेगा, जिसका पूरे ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक

प्रभाव पड़ेगा। इससे गरीबी और बेरोजगारी की दोहरी समस्याओं को हल करने में मदद मिलेगी।

भारत को किसानों के लिए 'मिनी टेक्नोलॉजी केन्द्रों' के विकास करने की जरूरत है। यह केन्द्र लोकल टेक्नोलॉजी को विकसित करने का काम करेंगे जो किसान की उत्पादकता बढ़ाने में मददगार साबित होगी। कौन सी फसल उगाना लाभदायक होगा, किस तरीके का प्रयोग सबसे लाभदायक होगा, जैसे मुश्किल सवालों का हल भी इन केन्द्रों द्वारा किया जाएगा और इस प्रकार लोकल किसान की जरूरत के हिसाब से टेक्नोलॉजी का निर्माण किया जाएगा।

देश का किसान आज बाजार के अभाव में पीछे रह गया है। हमें देश में मिनी सरकारी बाजार को विकसित करना होगा, जिससे कि जो बीच के दलाल हैं, जो किसान के हिस्से के प्रॉफिट को हजम कर जाते हैं, वह हट जाएंगे। भारत में क्षेत्रों के हिसाब से अलग-अलग तरह की फसलें उगाई जाती हैं। कहीं मसाला, कहीं गन्ना, तो कहीं धान की खेती की जाती है। बहुत सारे राज्यों में धान साल में दो बार उगाया जाता है। ऐसे क्षेत्रों में सरकार राइस इंडस्ट्री को बढ़ावा दे सकती है। इसी तरह से किसानों के लिए क्षेत्र अनुसार कई लोकल इंडस्ट्रीज को भी बनाने कि जरूरत है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाएँगी। सरकार को किसान वर्ग की कम से कम एक न्यूनतम आय तय करनी होगी। किसान की न्यूनतम आय तय करने से उसकी क्रय-शक्ति बढ़ेगी और जिसका सीधा असर भारत के उद्योग और रोजगार के इजाफे में होगा।

गाँव में खेती के साथ कृषि आधारित रोजगार को बढ़ाने की आवश्यकता है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देगी। आधे से अधिक कृषि श्रम बल भूमिहीन या लगभग भूमिहीन है, कृषि क्षेत्र के व्यवसायों में विविधता लाने के किसी भी प्रयास से ग्रामीण औद्योगिकीकरण और ग्रामीण क्षेत्र के विकास में लाभ होगा। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में रणनीतिक निवेश वर्तमान में सक्षम और कामकाजी आबादी की उपस्थिति के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे पैमाने पर औद्योगीकरण को ट्रिगर करने में मदद कर सकता है।

कृषि के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति किसानों को केन्द्र बिन्दु के रूप में रखेगी। कृषि विकास से कृषि आधारित ग्रामीण रोजगार पैदा होंगे और डेयरी,

सब्जियां, फल, मुर्गी पालन, मछली पालन आदि के लिए भी सेवाएं मिलेंगी। मिनिमम सपोर्ट प्राइस को लागू करना, दलालों और बिचोलियों को हटाना और गाँव में कृषि आधारित रोजगार को भी बढ़ावा देना, इन सब बिन्दुओं को ध्यान में रखकर कृषि क्षेत्र की रोजगार नीति को विकसित किया जा सकता है।

2. अशिक्षित और अनौपचारिक क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीतिः भारत का 93 फीसदी कार्यबल अनौपचारिक क्षेत्र में काम करता है। यह बड़ा हिस्सा किसी मजदूरी सुरक्षा के बिना ठेके पर काम कर रहा है। यहाँ ज़्यादातर श्रम कानून लागू नहीं हैं और यदि लागू हैं तो इनका पालन नहीं किया जाता।

इस देश के अंदर जो भी श्रमिक वर्ग है उनके लिए न्यूनतम आय की गारंटी की नीति को लागू करना चाहिए। भारत में पहले से ही एक ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना है, लेकिन भारत को रोजगार की समस्या को हल करने के लिए शहरी रोजगार गारंटी योजना की भी आवश्यकता है। इससे शहर में भी काम करने वाले मजदूरों की आमदनी और क्रयशक्ति में इजाफा होगा। जब आमदनी में बढ़ोत्तरी होगी तब वह सबसे पहले कहाँ जाएंगे? जरा सोचिए। साल भर जिस परिवार की बहू दो साड़ियों में गुजारा करती हो, वह भी इस आमदनी के द्वारा कम से कम चार साड़ियाँ ले पाएगी। ऐसा तो नहीं है कि उनके बच्चों की बहुत बड़ी-बड़ी ख्वाहिशें हैं। सिर्फ चार जोड़ी कपड़े बच्चों के लिए और परिवार के लिए। शायद इस आमदनी द्वारा वह इन छोटी-छोटी ख्वाहिशों को ज़्यादा तो नहीं पर बहुत हद तक पूरा कर पाएंगे। अगर आमदनी बढ़ती है तो सीधा असर व्यापार पर, बाजार पर दिखेगा। आज जिस दुकान पर दो व्यक्ति काम करते हैं, वहाँ चार होंगे। जब मांग बढ़ेगी तो मांग को पूरा करने के लिए सप्लायर भी चाहिए होगा। जिससे उद्योग बढ़ेंगे क्योंकि अब माल ज्यादा बनाना होगा। जिनके पास एक यूनिट है, हो सकता है आगे चार हो। आज लघु उद्योग खत्म हो रहे हैं। क्योंकि व्यापारियों को उनमें जूझना पड़ रहा है। न तो उद्योग बंद हो सकता है, न चल रहा है। जब व्यापारी का व्यापार चलेगा तो उद्योग बढ़ेंगे। इसलिए शहर में भी रोजगार गारंटी को लागू करना चाहिए। इससे सरकारी खजाने में भी टैक्स की बढ़ोत्तरी होगी। जब पैसा सर्कुलेशन में होगा तो देश की अर्थव्यवस्था को भी तो फायदा होगा।

भारत अपनी विदेशी व्यापार नीति में एक उल्टे शुल्क संरचना नीति (इनवर्टेड ड्यूटी स्ट्रक्चर) का पालन करता है जहां कच्चे माल की तुलना में तैयार माल पर टैक्स रेट कम होता है। इसके परिणामस्वरूप भारत में सामान को बनाने के बजाय बाहर से तैयार किए गए सामानों की खरीद होती है। हमें अपनी टैरिफ नीति को सही करने की आवश्यकता है जिससे भारत के अन्दर उद्योग बढ़े और कच्चे माल से तैयार माल को भारत के मजदूर बनायें। इसके अलावा तकनीकि रूप से उन्नत सामानों में आत्मनिर्भर बनने के लिए कई उत्पादों पर रिवर्स इंजीनियरिंग प्रक्रिया को लागू करने की जरूरत है। राष्ट्रीय रोजगार नीति में उत्पाद बनाने की टेक्नोलॉजी को सीखने पर जोर डाला जाएगा।

जिन क्षेत्रों में पूंजी के मुकाबले श्रम ज्यादा उपयोग होता है उनमें स्पेशल पैकेज तैयार करके उनको किक-स्टार्ट देने कि जरूरत है। फूड प्रोसेसिंग, चमड़ा, जूते, लकड़ी व फर्नीचर, निर्माण क्षेत्र, कपड़ा और परिधान आदि क्षेत्रों के लिए विशेष पैकेज तैयार करने की आवश्यकता है। ये सभी श्रम गहन क्षेत्र हैं और कुल उत्पादन क्षेत्र के रोजगार में 60 फीसदी से अधिक का योगदान देते हैं। प्रत्येक क्षेत्र के लिए विशेष रूप से डिजाइन किए जाने वाले इन पैकेजों को इस हिसाब से लागू करना चाहिए कि प्रत्येक क्षेत्र को 'इकॉनमी ऑफ स्केल' कैसे प्राप्त हो सकता है। श्रम आधारित मिनी टेक्नोलॉजी का निर्माण करने की आवश्यकता है जो भारत के हर हिस्से की लोकल जरूरतों के हिसाब से बनाई जाएगी।

ज्यादातर श्रमिक क्षेत्र जो उत्पादन करते हैं वो सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSME) द्वारा किया जाता है। एम.एस.एम.ई. के धंधे ठप पड़े हुए हैं। इन क्षेत्रों का पुनः प्रवर्तन न केवल नौकरियों के इजाफे के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि अर्थव्यवस्था के उत्पादन को पुनर्जीवित और भारत में मांग पैदा करने के लिए बहुत जरूरी है। भारत में 1450 आधुनिक उद्योग क्लस्टर और 4500 पारंपरिक उत्पाद क्लस्टर हैं। इन समूहों को संगठित तौर पर चलाने के लिए फाइनेंस की आवश्यकता है। धन की सख्त जरूरत वाले क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करके प्राथमिकता आधारित लोन देने की नीति शुरू करनी चाहिए। फिर 'इंसेंटिव बेस्ड लेंडिंग' नीति को अपनाना चाहिए जहाँ जो जितना ज्यादा उत्पादन करेगा उसके

मुताबिक आगे का लोन उसको कम दर पर दिया जाएगा। प्रोत्साहन आधारित धनराशि, क्लस्टर के प्रदर्शन पर केन्द्रित होगी। साथ ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए क्षेत्रीय विशेष बाजार चालू करने चाहिए। इन बाजारों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मांग और लोगों की क्रय-शक्ति बढ़ेगी जिससे क्लस्टर बड़े होंगे। क्लस्टर बढ़ेंगे तो और रोजगार पैदा करेंगे।

राष्ट्रीय स्तर पर LMIS (लेबर मार्किट इनफार्मेशन सिस्टम) या आम भाषा में रोजगार बाजार को बनाने की जरूरत है जहाँ जॉब मांगने वाले जॉब देने वालों से सीधा संपर्क कर सकें। भारत में कितने बेरोजगार हैं और कितनी कंपनियां कामगार ढूंढ रही हैं इस पूरे सिस्टम को एक जगह लाने की जरूरत है। यह रोजगार बाजार बनने से दोनों कंपनी और मजदूर को फायदा होगा।

अकुशल और अनौपचारिक क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति में मजदूरों के लिए न्यूनतम आय की गारंटी, औद्योगिक नीति हमारे कर्मियों के कौशल के आधार पर डिजाईन हो। न्यूनतम आय को हर क्षेत्र में लागू करने के साथ शहरी रोजगार की गारंटी योजना, श्रम आधारित उद्योगों के लिए विशेष पैकेज, रोजगार निर्माण के लिए उत्पादक केंद्रों में क्लस्टर विकास, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSME) के लिए पैकेज, क्षेत्र विशेष उत्पादन के लिए नई टेक्नोलॉजी का विकास, रोजगार का बाजार बनाना। इन सब नीतियों को लागू करके भारत के अनौपचारिक क्षेत्र के मजदूरों को रोजगार मिलना संभव हो पाएगा।

3. शिक्षित और औपचारिक क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीतिः भारत में आज बेरोजगारी कि समस्या से जो सबसे बड़ा तबका जुझता नजर आता है, वह हमारी शिक्षित प्रणाली है। नौकरियां उपलब्ध हैं, लेकिन इन नौकरियों में बहुत कम वेतन मिलता है जैसा कि उन लोगों के साथ होता था जो गाँवों के कृषि क्षेत्र में काम करते थे। पिछले 10 सालों से भारत की शिक्षित बेरोजगारी दर लगातार बढ़ रही है। शिक्षित लोग जो बेरोजगार हैं उनकी संख्या पिछले 6 सालों में दुगनी हो गयी है। एक रिसर्च बताता है कि भारत में पिछले 8 सालों से लगातार हर साल लगभग 5 लाख इंजीनियर तैयार होते हैं और हर साल 2.25 लाख भी नया रोजगार पैदा नहीं होता है।

लाखों लोग खासतौर से शिक्षित लोग जो कृषि क्षेत्र से निकलकर रोजगार की तलाश में गाँव से शहर आते हैं, उन्हें रोजगार नहीं मिल रहा है। नौकरी की आस में युवा बड़ी संख्या में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं लेकिन शिक्षित युवा को रोजगार के अवसर नहीं मिल रहे हैं। अच्छी नौकरी न मिलने पर या तो वे कृषि क्षेत्र में वापस जाने को मजबूर हो जाते हैं या फिर अपने घरों से दूर कम पैसा देने वाले उद्योगों में काम करने का विकल्प चुनते हैं।

आज जो व्यवस्था पैदा हुई है, उसमें जो पूरा परिदृश्य है, उससे पता लगता है कि भारत का पढ़ा-लिखा बेरोजगार समाज सबसे ज्यादा शहर में है। इस समस्या को हल करने के लिए शहरी औद्योगीकरण पर ध्यान देने की जरूरत है और सर्विस क्षेत्रों की उन सेवाओं को विकसित करने की जरूरत है जो भारत में अधिकांश शिक्षित श्रमिकों को भर्ती कर सके।

टेलिकॉम, आईटी, बैंकिंग, बीमा, पेंशन, पर्यटन और परिवहन सेवाओं आदि को ध्यान में रखकर रोजगार नीति बनानी चाहिए। इन क्षेत्रों में भारत में काम करने वाले लगभग 5 करोड़ मेहनतकश हैं। अगर इस तरह के सर्विस क्षेत्रों में लोगों को आर्थिक न्याय की गारंटी की जाए तो शिक्षित युवाओं का रुझान इन सर्विस क्षेत्रों में बढ़ेगा जिससे ये सर्विस क्षेत्र और ज्यादा विकसित होंगे। शिक्षित युवा को काम मिले और काम की गारंटी भी मिले इससे वह काम मन लगाकर कर पाएगा, नहीं तो हमेशा नौकरी छूटने के डर से ढंग से काम नहीं कर पाता है।

शिक्षित युवाओं के बीच उद्यमशीलता (entrepreneurial) की मानसिकता को विकसित करने के लिए स्कूल के साथ-साथ कॉलेज स्तर पर पाठ्यक्रमों की आवश्यकता होगी जो व्यवसायों के बारे में बात करें और बच्चों को सिखायें कि उन्हें नौकरी लेने वाले की बजाय नौकरी देने वाली मानसिकता से आगे बढ़ना होगा।

साथ ही सरकारी नौकरियों को बढ़ाने की जरूरत है। अगर सरकार स्कूल, अस्पताल, पुलिस और न्यायपालिका को विकसित करने में सफल होती है तो इन जगहों पर हमारे शिक्षित युवा काम कर पाएँगे और देश को आगे बढ़ा पाएँगे। भारत में शिक्षा क्षेत्र पर जीडीपी का सिर्फ 4.6 फीसदी हिस्सा और स्वास्थ्य क्षेत्र

में सिर्फ 1.6 फीसदी हिस्से का उपयोग किया जाता है। शिक्षा क्षेत्र के हिस्से को 10 फीसदी करने की जरूरत है और स्वास्थ्य क्षेत्र के हिस्से को 6 फीसदी तक बढ़ाने की जरूरत है।

शिक्षित और औपचारिक क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति उन लाखों युवाओं पर ध्यान केन्द्रित करेगी जिन्होंने बेहतर शिक्षा प्राप्त की है और काम की तलाश कर रहे हैं। शहरी रोजगार की गारंटी, रोजगार बाजार का विकास, सर्विस क्षेत्र में श्रमिक आधारित क्षेत्रों को बढ़ावा और उद्यमशीलता (entrepreneurial) की मानसिकता का विकास, स्वास्थ्य और शिक्षा में सार्वजनिक निवेश से सरकारी नौकरियों का निर्माण। इन सब बिन्दुओं को ध्यान में रखकर शिक्षित और औपचारिक क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति को विकसित किया जा सकता है।

4. महिलाओं के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीतिः भारत में लगभग सभी महिलाएं काम करती हैं। इसके लिए या तो उन्हें पैसे दिए जाते हैं या उनको पैसे नहीं दिए जाते। महिलाएं घरेलू गतिविधियों का ध्यान रखती हैं। महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि गतिविधियों में भी मदद करती हैं और शहरी क्षेत्रों में काम करने के लिए बाहर जाती हैं। जिन महिलाओं को दोनों काम करने होते हैं – घर के काम और आर्थिक गतिविधियों में भी शामिल होना, उनको दोगुना बोझ उठाना पड़ता है। महिलाओं के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति महिलाओं को उनकी उचित गरिमा प्रदान करेगी। महिलाओं के लिए मिनिमम इनकम गारंटी की योजना लाने की जरूरत है जिससे महिलाएं पैसों के लिए किसी पर भी निर्भर न रहें। इसके साथ ही जो महिलाएं अपना व्यापार शुरू करना चाहती हैं उन्हें बिना किसी ब्याज दर के लोन देना सुनश्चित करना होगा। सरकार के इस कदम से हमारे समाज में महिलाओं का सशक्तीकरण होगा और वो आर्थिक गतिविधियों में शामिल होंगी।

1987 में श्रमशक्ति नाम की कामकाजी महिलाओं पर एक ऐतिहासिक रिपोर्ट आयी थी। इसमें नोट किया गया कि सभी महिलाएं श्रमिक हैं क्योंकि वे निर्माता और प्रजननकर्ता हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि समाज में पितृसत्तात्मक सोच मुख्य रूप से महिलाओं को देखभाल करने वालों की भूमिका में रखते हैं। रिपोर्ट की सिफारिशें सामूहिक रूप से लागू करने के लिए क्रेडिट, सामाजिक उत्थान और मजबूत न्यायिक प्रणाली की आवश्यकता है।

हमारी जनसंख्या का 50 फीसदी हिस्सा महिलाओं का है और भारत के सभी प्रकार के रोजगार क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी दर दुनिया में सबसे कम है। लड़कियाँ उच्च स्तर की शिक्षा हासिल करने के बावजूद नौकरी नहीं पाती हैं। उत्पादन के क्लस्टर के करीब महिलाओं की नौकरियों को बढ़ावा देने की जरूरत है, जिससे ग्रामीण लड़कियों को भी अवसर मिलेंगे, जिन्हें हमारे परिवार की मानसिकता के कारण बड़े शहरों में जाने की अनुमति नहीं मिलती। वे अपने क्षेत्र की लोकल टेक्नोलॉजी और उत्पादन के गुर सीखेंगी और उन क्षेत्रों में काम कर सकेंगी जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पारंपरिक रूप से प्रसिद्ध हैं।

हमें महिला उद्यमशीलता (entrepreneurial) विकास के लिए एक सोची-समझी रणनीति बनाने कि जरूरत है। महिलाएं आर्थिक रूप से आजाद और सफल हों, इसके लिए आवश्यक वातावरण और कौशल प्रदान करने की आवश्यकता है। महिलाएं जो छोटे उद्योगों में काम कर रही हैं, उन्हें उद्यमशीलता (entrepreneurial) की ट्रेनिंग देने कि जरूरत है जिससे वो अपने व्यापार का विस्तार कर सकें।

कृषि क्षेत्र में महिलाओं के लिए अवसर बनाए जाए। जिन्होंने अपने पूरे जीवन में एक ही प्रकार का श्रम किया है उनके लिए खेती और खेती से जुड़े हुए व्यवसायों में रोजगार पैदा करने की आवश्यकता है। महिलाओं के लिए स्वयं सहायता समूह (सेल्फ हेल्प ग्रुप) भारत के कई हिस्सों में सफल साबित हुए हैं और उन्हें सरकार की तरफ से प्रोत्साहन देने कि जरूरत है जिससे उसे एक रणनीति के रूप में अपनाया जा सकता है।

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति में महिलाओं के लिए न्यूनतम इनकम की गारंटी, महिला आबादी के लिए विशिष्ट व्यावसायिक कार्यक्रम, महिलाओं के लिए व्यापार संबन्धित बिना ब्याज के लोन, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए कृषि आधारित रोजगार के अवसर प्रदान करना, महिला नौकरियों के लिए सेल्फ हेल्प ग्रुप और क्लस्टर को प्रोत्साहन देना और महिलाओं की आबादी के लिए कौशल विशिष्ट रोजगार को डिजाइन करना होगा।

5. स्वरोजगार और कारीगरों के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीतिः हम अपने आस पास कई लोगों को देखते हैं जो किसी मालिक के नीचे काम नहीं कर

रहे होते। कहने को तो यह स्वरोजगार करते हैं लेकिन गरीब और मजबूर हैं। प्लम्बर, टेलर, मोची, नाई, मिस्त्री, कारपेंटर, कपड़े प्रेस करने वाले, चौकीदार, घर में झाड़ू-पोंछा करने वाले, दूध वाले, चाय वाले, नुक्कड़ पर चाट बेचने वाला, ओला-उबेर चलाने वाले, स्विग्गी-जोमैटो में खाना पहुँचाने वाले, घर-घर जाकर सामान बेचने वाले आदि। यह सब लोग स्वरोजगार करते हैं लेकिन इनकी आमदनी बहुत कम है। इन सभी स्वरोजगार मजदूरों को संगठित करने की जरूरत है और उसके लिए ऑनलाइन बाजार चाहिए। इन सभी लोगो के लिए एक मिनिमम आय गारंटी को लागू करने की जरूरत है।

आजकल जो लोग फोन पर एप्प के जरिये ऑनलाइन काम करते हैं, उनको गिग इकॉनमी में काम करने वाले मजदूर कहते हैं। यह सारे गिग वर्कर्स की आर्थिक सुरक्षा खतरे में रहती है क्योंकि इनको कानूनी तौर पर श्रम कानूनों के अन्दर नहीं रखा गया है, सरकार को इन स्वरोजगार मजदूरों के लिए कानून बनाने की जरूरत है और इन लोगों को ट्रेनिंग के लिए प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

ज्यादातर बैंक कारीगर आधारित समूहों को लोन सुविधा देने के लिए उत्सुक नहीं होते हैं। यहाँ प्रोत्साहन आधारित लोन सुविधाओं को व्यवस्थित किया जा सकता है। गिग इकॉनमी में काम करने वाले मजदूरों का एक मिनिमम आय फिक्स हो, और उनके पास रोजगार-आधारित सुरक्षा भी उपलब्ध हो। कई सारे स्वरोजगार आज भी हैं जो किसी एप्प पर काम नहीं करते बल्कि अपने व्यक्तिगत संबंधो के जरिये अपनी रोजी-रोटी चलाते हैं जैसे प्लम्बर, बिजली मिस्त्री, कपड़े प्रेस करने वाले आदि। इन लोगों को औजारों के लिए लोन लेने की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिए जिससे यह अपने व्यापार का विस्तार कर सकें। जैसा कि मैंने पहले भी चर्चा की है, भारत में शहरी रोजगार गारंटी योजना की जरूरत है, जो शहरी श्रमिकों को रोजगार की सुरक्षा देने और उत्पादकता बढ़ाने में मदद कर सकती है।

स्व-नियोजित श्रमिक जैसे मोची, चाट वाले, नाई आदि अपने काम के विशेषज्ञ होते हैं। आप सभी इस तरह के किसी न किसी व्यक्ति को जानते होंगे जो अपने काम में बहुत अच्छे हैं, लेकिन अपना कौशल दिखाने के लिए उनके

पास कोई औपचारिक डिग्री नहीं है। रोजगार नीति के तहत श्रमिकों में पहले से मौजूद कौशल की औपचारिक मान्यता को प्रोत्साहित करना चाहिए। सरकार के पास इसके लिए 'प्रायर लर्निंग' (पूर्व शिक्षा) नीति है लेकिन इस नीति के बारे में कुछ ही लोग जानते हैं, इसमें सुधार और इसको बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय रोजगार नीति के तहत लागू करना होगा।

स्वरोजगार और कारीगरों के लिए राष्ट्रीय रोजगार नीति के तहत तकनीकी काम करने वाले कारीगरों के लिए प्रशिक्षण, लोन एवं क्रेडिट की व्यवस्था, न्यूनतम आय की गारंटी और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी पर ध्यान केंद्रित किया जायेगा। इसके साथ-साथ यह प्रोत्साहित किया जाएगा कि स्थानीय कारीगर जो अपने-अपने कार्य-क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं, उन्हें उस क्षेत्र में मान्यता की औपचारिक डिग्री दी जाए।

6. राष्ट्रीय रोजगार नीति के अनुसार कौशल नीति बनानाः भारत की कुल जनसंख्या 138 करोड़ है और भारत में कुल काम कर रहे लोगों की संख्या 47.1 करोड़ है। इस काम कर रही वर्कफोर्स में से 60 फीसदी से अधिक की शिक्षा आठवीं पास से कम है। हमें सभी क्षेत्रों में शिक्षा प्रणाली में बदलाव करने होंगे। सामान्य ज्ञान, गणित, इतिहास जैसे विषयों के साथ-साथ तकनीकी विकास की भी शिक्षा देनी जरूरी है। बच्चों को स्कूल से निकलने के बाद काम मिलने की गारंटी होनी चाहिए। हमें अर्थव्यवस्था को तकनीक आधारित करना होगा।

भारत का 5 फीसदी से भी कम कार्यबल औपचारिक तौर पर कुशल गिना जाता है, वहीं ये आंकड़े साउथ कोरिया में 96 फीसदी, जापान में 80 फीसदी, जर्मनी में 75 फीसदी और चाइना में 74 फीसदी हैं। इसको ठीक करने के लिए भारत सरकार की एक नीति है 'स्किल इंडिया'। इस नीति में अभी तक लगभग 20 हजार करोड़ रुपया खर्च हो गया है। इस नीति की ट्रेनिंग पूरी करने के बाद नौकरी सिर्फ 17 फीसदी लोगों को मिलती है, मतलब अगर 100 लोगों ने ट्रेनिंग ली तो उनमें से सिर्फ 17 लोगों की नौकरी लगी। कैसे लगेगी नौकरी जब नौकरियाँ हैं ही नहीं। जिनकी नौकरी लगती भी है, उनका औसतन वेतन 10 हजार से 12 हजार रूपये है। ट्रेनिंग के बाद भी नौकरी न लगना और अगर लगे तब भी इतने कम पैसे मिलना, इसका मुख्य कारण यह है कि जो कुछ ट्रेनिंग

में सिखाया जाता है वो नाकाफी है। बड़े-बड़े उद्योगपति बताते हैं कि भारत की कौशल नीति और उद्योग की जरूरतों में बहुत ज़्यादा अन्तर है।

इस नीति में पहली जरूरत क्वांटिटी कि जगह क्वालिटी पर ध्यान केंद्रित करने की है। कई संस्थान खोले जाते हैं, लेकिन इन संस्थानों में कमजोर ट्रेनिंग प्रदान की जाती है, जिसके कारण शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी बच्चे रोजगार योग्य नहीं होते हैं। इन शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों में गुणवत्ता जांच की प्रक्रिया अपनानी होगी।

भारतीय कंपनियाँ भारतीय शिक्षा प्रणाली की फ्री राइडर (मुफ्त सवार) रही हैं। बच्चे सार्वजनिक शिक्षा के सर्वश्रेष्ठ संस्थानों से सीखते हैं और कंपनियाँ इन प्रशिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त कर लेती हैं और उनकी सभी विशेषज्ञता उस कंपनी को मुफ्त में मिल जाती है। आईआईटी, आईआईएम के सबसे बुद्धिजीवी छात्र/छात्राएँ इन कॉरपोरेट्स के लिए ही काम करते हैं। एक कौशल टैक्स लागू करने की आवश्यकता है जिसके माध्यम से शिक्षा क्षेत्र को फण्ड किया जा सकता है। एम्प्लायर इन व्यक्तियों से लाभ प्राप्त कर रहे हैं तो एम्प्लायर को भी कौशल टैक्स के माध्यम से बच्चों की शिक्षा के लिए भुगतान करना चाहिए। कौशल नीति को रोजगार नीति के अनुसार बनाया जाएगा तो जो लोग अपनी ट्रेनिंग पूरी करेंगे उनको आसानी से काम मिल जाएगा।

इन छः स्तंभों को लागू करके राष्ट्रीय रोजगार नीति के वैकल्पिक मॉडल में भारत की बेरोजगारी की समस्या का समाधान छुपा है। दुनिया के सबसे युवा देश में बेरोजगारी का संकट एक अत्यंत निंदनीय स्थिति है। देश के युवा को रोजगार देना शायद सरकार के एजेंडे में ही नहीं है। जब भी हम भारत में बेरोजगारी की चर्चा करते हैं तो सामान्य तौर पर हमारा दिमाग इस तरफ जाता है, जो सरकारों ने प्रचारित कर रखा है कि इतनी जनसंख्या बढ़ गई है। सबको रोजगार कैसे मिलेगा। इससे लोगों को लगता है, यदि लोग बढ़ जाएंगे तो साधन तो सीमित है, लोगों को काम कैसे मिलेगा।

भारत कि अर्थव्यवस्था में जनसंख्या बहुत महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। लेकिन इसको ठंडे दिमाग से सोचना और समझना बहुत जरूरी है। जिस समय

दुनिया के दूसरे देशों की औसतन आयु बढ़ रही है, भारत जनसांख्यिक लाभांश से गुजर रहा है। भारत दुनिया का सबसे ज़्यादा युवा आबादी वाला देश है, विदेश की रिसर्च कंपनी 'बोस्टन कंसल्टेंसी' की रिसर्च बताती है कि साल 2030 तक दुनिया लगभग 48 करोड़ श्रमिकों की कमी से गुजर रही होगी और उस समय भारत के पास लगभग 25 करोड़ अधिक श्रमिक होंगे। दुनिया में श्रमिकों की कमी को भारत अपने कौशल से पूरा कर सकता है। बस कमी है तो इन श्रमिकों को शिक्षित करने और कुशल बनाने की। हमें जरूरत है व्हाट्सएप्प यूनिवर्सिटी के 'जनसंख्या एक अभिशाप' वाले झूठे मैसेज को नकारने की और लोगों को यह सच्चाई बताने की कि सरकार की नीतियाँ ही बढ़ती बेरोजगारी के लिए जिम्मेदार हैं। अगर नीतियाँ बदल दी जाएँ तो बेरोजगारी का समाधान मिल सकता है। अगर जनसंख्या ही विकास न होने का सबसे बड़ा कारण होती तो आज चीन पूरी दुनिया को अपने उत्पाद एक्सपोर्ट नहीं कर रहा होता।

हमें भारत को अपनी परिस्थितियों व क्षेत्रों के अनुरूप विकसित करने के लिए दुनिया से सीखकर अपनी तकनीक का आविष्कार करने की जरूरत है। हम आविष्कार करके उत्पादन करने की जगह दुनिया से तैयार माल ले रहे हैं। हमारे देश के अर्थशास्त्रियों के पास इतना दिमाग है कि सरकार अगर निर्णय ले कि हमारे भारतीय नक्शे पर जो हिस्से हैं पर्वतीय क्षेत्र जैसे उत्तराखंड, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर, सिक्किम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश इत्यादि। रेगिस्तानी क्षेत्र जैसे राजस्थान। वनस्पति और जंगली क्षेत्र जैसे असम, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, ओड़िशा, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना, पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडु आदि। यह सब जितने भी हमारे भारतीय क्षेत्र है, यहाँ पर इन्हीं क्षेत्रों के अनुसार तकनीक विकसित करने की जरूरत है। जिससे उद्योग एवं रोजगार बढ़ सके। इन सभी क्षेत्रों में बहुत कुछ ऐसा है, जो आज भी छुपा हुआ है।

अब बात आती है कि इस नीति को देश में लागू करने के लिए पैसा कहाँ से आएगा। भारत का जो टैक्स सिस्टम है वो रेग्रेस्सिव टैक्स सिस्टम है जहाँ ज्यादातर टैक्स जो इकठ्ठा होता है वो अप्रत्यक्ष टैक्स से होता है। अप्रत्यक्ष टैक्स वह टैक्स है जो देश के सभी नागरिकों को एक समान देना पड़ता है। चाहे एक

अरबपति हो या किसान हो या एक मजदूर हो, सभी रोटी, कपड़ा, मकान, और अन्य बुनियादी उत्पादों के लिए एक ही दर पर टैक्स देते हैं। वहीं दूसरी ओर 138 करोड़ की आबादी वाले देश में केवल 1.5 करोड़ लोग इनकम टैक्स देते हैं। भारत में सबसे अमीर वर्ग के लिए इनकम टैक्स का दर दुनिया में सबसे कम है। भारत की अर्थव्यवस्था को किक-स्टार्ट करने के लिए सबसे अमीर वर्ग पर संपत्ति कर लगाने की आवश्यकता है। वर्तमान सरकार के आईआरएस के अफसरों ने कोरोना संकट से उबरने के लिए 40 फीसदी का एक बार का वेल्थ टैक्स, एक करोड़ से अधिक की आय वाले लोगों पर लगाने का सुझाव दिया लेकिन सरकार ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया और इस सुझाव को सार्वजनिक करने के लिए युवा अधिकारियों पर जाँच शुरू कर दी। मेरा मानना है कि वेल्थ टैक्स और इनहेरिटेंस टैक्स लागू करने से न सिर्फ अर्थव्यवस्था को किक-स्टार्ट मिलेगा बल्कि ये भारत को विकास के पथ पर ले जाने के लिए भी पर्याप्त है।

जब राष्ट्रीय रोजगार नीति के इन छः सूत्रों पर सरकार काम करेगी, नीतियाँ तय करेगी तो रोजगार की गारंटी की जा सकती है। भारत की अर्थव्यवस्था हो या दुनिया की कोई भी अर्थव्यवस्था हो, उसके संचालन के लिए उसमें पैसे का सर्कुलेशन जरूरी है। अर्थव्यवस्था अगर रन नहीं होगी, तो जो परिस्थिति पैदा होगी, उसे आर्थिक मंदी कहते हैं। क्योंकि जिसको खत्म किया जा रहा है, वह जनता की भागीदारी है। लेकिन जो दूसरा काम करने की जरूरत है, वह है एक सर्कुलेटेड अर्थव्यवस्था को बनाने की। भारत एक बहुत बड़ा मार्केट है, सबसे बड़ा मार्केट वही होता है जहाँ सबसे ज्यादा उपभोक्ता होते हैं। भारत में गरीबी की हालत में भी अमेरिका को सिर्फ इस बात का भरोसा है कि अगर हमने भारत के मार्केट पर कब्जा कर लिया तो उत्पादन अमेरिका करेगा और उसकी सप्लाई भारत में होगी और उनकी आमदनी बढ़ेगी। आज चीन की अर्थव्यवस्था भी इस बात पर टिकी है कि अगर दुनिया के अंदर उसकी सप्लाई बंद हो गई तो आमदनी कहाँ से होगी? पूरी दुनिया की बड़ी कंपनियों की आज जो गिद्ध दृष्टि भारत पर है, उसका कारण है कि भारत एक बड़ा उपभोक्ता देश है। अगर यह दुनियावालों को समझ में आ रहा है तो भारत के लोगों को क्यों नहीं आ रहा?

भारत में नीतियाँ पांच साल सरकार सही चल जाए उस हिसाब से बनती हैं, जिसके चक्कर में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार नीतियों पर ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि इनका फायदा देश को लॉन्ग रन में प्राप्त होता है। इस सोच को बदलकर एक दृढ़ निश्चय और मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ राष्ट्रीय रोजगार नीति को लागू करने की जरूरत है। सामाजिक विविधताओं से भरे इस देश में राष्ट्रीय रोजगार नीति पर अगर काम किया जाए तो भारत भी एक महाशक्ति बन सकता है। अगर इस देश को आगे बढ़ाना है तो हमें युवाओं के भविष्य का निर्माण भी करना पड़ेगा। व्यापक दृष्टि से देखें तो धीरे-धीरे भारत को महाशक्ति बनाने की तरफ एक संकल्प लेकर आगे बढ़ने का रास्ता ही है यह राष्ट्रीय रोजगार नीति।

❑❑❑

अध्याय
7

प्राकृतिक संसाधनों का विनाश और पर्यावरण संरक्षण

आमतौर पर जब हम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग देशों के मुद्दों पर चर्चा करते हैं तो प्रत्येक देश की अपनी अलग तरह की समस्याएँ होती हैं। जैसे अमेरिका की आर्थिक समस्या और अफ्रीकी देशों की आर्थिक समस्या अलग-अलग है। भारत की सामाजिक समस्या और चीन की सामाजिक समस्या अलग-अलग है। पर जब हम पर्यावरण या उससे जुड़ी समस्याओं पर बात करते हैं तो यह पूरे विश्व की एक साझी समस्या है।

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है 'चारों ओर का आवरण', यानी पर्यावरण किसी व्यक्ति, समाज, राज्य, देश तथा महादेश के चारों ओर प्राकृतिक घटकों का आवरण है। यह प्राकृतिक घटक वायु, जल, जंगल, जमीन तथा वन संपदा हैं। साथ ही वे सभी छोटे- बड़े जीव जो इन सबसे जुड़े हुए हैं वे भी इस पर्यावरण का हिस्सा हैं। इन्सान भी इसी पर्यावरण का एक हिस्सा है। प्रकृति में सभी प्राणियों की उत्तरजीविता के लिए एक संतुलित व्यवस्था बनी हुई है। सभी सजीव प्राणी व प्राकृतिक घटक एक- दूसरे से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। इस पूरी व्यवस्था में अगर एक भी कड़ी प्रभावित होती है तो अन्य कड़ियाँ भी प्रभावित होंगी। एक पानी के जहाज की कल्पना कीजिये जो कई सारे नट- बोल्ट से जुड़ा होता है। इनमें से यदि एक नट निकल जाता है तो कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। दुसरा निकल जाये तो भी ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता पर धीरे-धीरे यह प्रक्रिया जहाज के मुख्य भागों को कमजोर बना देगी और यह जहाज नष्ट होकर डूब जाएगा। इसी प्रकार यदि हम प्रकृति में विद्यमान जैविक और अजैविक कारकों को नष्ट करते रहेंगे तो हमारा पर्यावरण भी एक दिन नष्ट हो सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण की क्षति पर ध्यान 70 के दशक के बाद गया। यदि पर्यावरण क्षति का आकलन किया जाए तो औद्योगिक क्रान्ति के बाद विकास की अंधाधुंध दौड़ में पश्चिम के विकसित देशों ने धरती के पर्यावरण और इकोसिस्टम को सर्वाधिक नुकसान पहुंचाया है। आज विकसित देश जब पर्यावरण को लेकर सचेत हो रहे हैं तो उनके द्वारा पर्यावरण प्रतिकूल विकास की पद्धति को भारत जैसे विकासशील देशों द्वारा अनुसरण नहीं करना चाहिए। विकास की इस दौड़ ने यूरोप की वायु को इतना दूषित कर दिया की एक रिपोर्ट के अनुसार 2005 में 3,10,000 यूरोपियन नागरिकों की मृत्यु वायु प्रदूषण से हो गई थी। भारत में औद्योगिक इकाइयों द्वारा नदियों में अनुपचारित जल छोड़ने से जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है और एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 15 लाख बच्चे पानी द्वारा उत्पन्न बीमारियों से 5 वर्ष की उम्र से पहले ही मर जाते हैं। धरती का तापमान बढ़ना, अंटार्कटिक महाद्वीप के ऊपरी वायुमंडल में ओजोन छिद्र होना, जलवायु में परिवर्तन, महासागरीय जल स्तर का बढ़ना आदि यह सब पर्यावरण में बढ़ते मानवीय प्रदूषण के कारण हुआ है। पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण को रोकने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सयुंक्त राष्ट्र के द्वारा अलग-अलग समय पर कई संगोष्ठियों का आयोजन हुआ है जैसे स्टॉकहोम संगोष्ठी (1972), रियो शिखर सम्मलेन या 'अर्थ समिट' (1992) तथा पेरिस समझौता (2015) आदि।

यदि वर्तमान का उदाहरण लिया जाए तो आज जो कोरोना महामारी फैली है, जिसने बड़े-बड़े देशों, बड़े-बड़े संस्थानों, बड़े-बड़े नीति निर्माताओं को होम आइसोलेट कर दिया है। आज उनकी समझ में नहीं आ रहा कि इस महामारी का समाधान कैसे हो, अंत में कहा गया कि अपनी रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाइए। घूम-फिरकर गेंद प्रकृति के पाले में ही आ गयी। मनुष्य के शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता तो उसके पर्यावरण, जलवायु और खान-पान की पद्धति से जुड़ी है और यह सब हमें प्रकृति से मिलता है। याद रखिये प्रकृति को नुकसान पहुंचाने का मतलब है आप इंसान की समस्त प्रजाति को खतरे में डाल रहे हैं। जब हम संतुलित दृष्टिकोण से काम नहीं करते तो विकास, विनाश का रूप ले लेता है।

अब आपको यह लग रहा होगा की सिर्फ प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा के चक्कर में तो हम विकास की दौड़ में पीछे रह जायेंगे? मेरा मानना है कि हम सभी को ठण्डे दिमाग से सोचने की जरूरत है कि केवल विकास को लेकर चलोगे तो समस्या होगी और अगर केवल प्रकृति को लेकर चलोगे तो भी समस्या होगी। हमें एक मध्य का मार्ग चाहिए, एक बीच का रास्ता। आज भारत को एक संतुलित पर्यावरण अनुकूल सिस्टम के साथ आगे बढ़ने की आवश्यकता है। आज एक समावेशी विकास की जरूरत है, जिसमें औद्योगिक विकास के साथ पर्यावरण को भी संरक्षित किया जा सकता है। इसके लिए पर्यावरण अनुकूल तकनीक के आविष्कार की जरूरत है और मेरा मानना है की इस तरह की तकनीक विकसित की जा सकती है। भारत में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं और अगर भारत के बेटे-बेटियों को मौका दिया जाए तो वे क्षेत्र की भौगोलिक सरंचना और प्राकृतिक संसाधन की उपलब्धता के आधार पर नया आविष्कार कर सकते हैं जो प्रकृति के भी हित में होगा और मनुष्यों के भी हित में होगा।

कई लोगों के मन में यह सवाल भी उठ रहा होगा की इस नई तकनीक का स्वरूप क्या होगा और पुरानी तकनीक में क्या खराबी है? मेरा मानना यह है कि ये जितनी भी तकनीक हैं, इनमें से अधिकतर विकसित देशों द्वारा त्याग दी गयी हैं और हमारे देश में उसी तकनीक को नया मानकर उपयोग में लाया जाता है। हमें ज्ञान-विज्ञान की पद्धति को सीखना चाहिए पर हम बिना सोचे समझे वहाँ की तकनीक उठा लेते हैं और यहाँ पर लागू कर देते हैं। और मैं नयी तकनीक की वकालत इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि आज इसकी सख्त जरूरत है। आज ऊर्जा के मुख्यत: दो प्रकार के स्रोतों से हम अपने दैनिक जीवन का संचालन करते हैं। पहला ऊर्जा के वे स्रोत जो लाखों वर्षों की प्राकृतिक घटनाओं से बने जिन्हें ऊर्जा के अनवीकरणीय स्रोत कहते हैं जो एक समय के बाद समाप्त हो जायेंगे जैसे कोयला, पेट्रोल और इनके उपयोग से इकोसिस्टम में प्रदूषण भी अधिक होता है। दूसरा ऊर्जा के वे प्राकृतिक स्रोत जो असीमित हैं जिन्हें नवीकरणीय स्रोत कहते हैं और यदि सही तकनीक द्वारा इनका उपयोग किया जाए तो प्रदूषण भी बहुत कम होगा जैसे सौर ऊर्जा।

आज पर्यावरण जैसे आवश्यक मुद्दों से निपटने के लिए सरकारों को नीति बनाते समय अपने नागरिकों को ध्यान में रखना चाहिए। वर्तमान में भारत सरकार द्वारा एनवायरनमेंट इम्पैक्ट असेसमेंट (EIA) का संशोधित ड्राफ्ट लाया गया है जिसमें जनता के सुझाव की सीमा को घटा दिया गया और इसे लेकर प्रकृति प्रेमी समूहों ने रोष भी प्रकट किया। मैं ये कहता हूँ की ऐसे मुद्दे जो जनता की सांस से जुड़े हुए हैं, इन पर इतनी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। ये जल, जंगल और जमीन हम सबका है इसका न्यायपूर्ण उपयोग सुनिश्चित करना चाहिए। भारत के लोग, भारत की सरकार बनाते हैं। यदि वोट देने में भारत के लोगों की हिस्सेदारी है तो नीतियाँ बनाने में भी भारत के लोगों की हिस्सेदारी होनी चाहिए। कुछ लोगों को लाभ पहुँचाने के चक्कर में कहीं भोपाल गैस त्रासदी जैसी घटनाएँ फिर से घटित न हो जाएँ। आज भारत के प्रचुर संसाधनों पर अंतर्राष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी नजर गड़ाए हुए हैं। इन संसाधनों को लूट लेना चाहती हैं।

प्राकृतिक संसाधनों के नीतिगत उपयोग के लिए एक सकारात्मक सोच को विकसित करने की जरूरत है। हम सबको प्राकृतिक संसाधनों के सततपोषी प्रबंधन (Sustainable management) को प्राथमिकता देनी होगी, चाहे वो सरकार के स्तर पर बैठे हुए लोग हों, चाहे ग्राम सभा के स्तर पर, चाहे शहर में रहने वाले नागरिक हों या गाँव में। हमें यह समझना पड़ेगा की प्रकृति के पास इंसान के जीवन को चलाने के लिए सब कुछ है पर इंसान के लोभ की पूर्ति के लिए कुछ नहीं है। जिस प्रकार आज मेरे पास जो कुछ भी पूंजी है, मैं उसका उपभोग करते समय इस बात का ध्यान रखता हूँ कि मेरे परिवार के सभी सदस्यों को वह बराबर रूप से बाँटना चाहिए और साथ ही कुछ बचत करना चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इसका उपभोग कर सकें। इसी प्रकार प्राकृतिक संसाधनों के संदर्भ में भी हमें सोचना पड़ेगा। सही अर्थों में तभी "वसुधैव कुटुम्बकम" का भाव सार्थक होगा।

❑❑❑

अध्याय
8

वैज्ञानिक चेतना एवं भारतीय समाज

भारत या दुनिया के अंदर आज जो कुछ भी हम देख रहे हैं, निश्चित रूप से वह विज्ञान की देन है। विज्ञान ने मनुष्य की जिंदगी को जितना सरल बनाने में सहयोग दिया है, शायद किसी ने नहीं दिया है। हम सब को यह पता है कि मनुष्य ने अपने जीवन के प्रारंभ में जंगलों में, नदी के किनारे यात्रा शुरू की थी, तब उसके सामने बहुत तरह की चुनौतियां थीं और उन चुनौतियों के समाधान के संघर्ष का जो रास्ता है, वही विज्ञान का रास्ता है। ज्ञान कई प्रकार का होता है। जैसे कुछ चीजों को हम देखते हैं, कुछ चीजों को सुनते हैं और कुछ चीजों को पढ़ते हैं तो हमारा ज्ञान बनता है। सूचनाओं के आधार पर जो ज्ञान बनता है वही जांच-परख के बाद विज्ञान बन जाता है।

सुनी हुई बात सत्य भी हो सकती है, असत्य भी हो सकती है। पढ़ी हुई बात सत्य भी हो सकती है, असत्य भी हो सकती है। लेकिन सुनी हुई और पढ़ी हुई बातों पर, ज्ञान पर अनुसंधान करते हैं, प्रयोग करते हैं, परखते हैं तो वह विज्ञान की श्रेणी में पहुँच जाता है। फिर उसके गलत होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। इसलिए विज्ञान में प्रयोग का सबसे बड़ा महत्त्व है। प्रयोगशाला में यही होता है कि कोई भी चीज हो, उसका अनुसंधान एवं प्रयोग करो। अनुसंधान और प्रयोग के पश्चात जो ज्ञान सामने आता है, उसे हम विज्ञान कहते हैं। आज जितने तरह की खोजों की बात हम करते हैं, निश्चित रूप से उसे विज्ञान ने दिया है। आज की जिन्दगी में सुबह जब आप उठते हैं, जिन चीजों की आपको सबसे पहले जरुरत होती है, वह विज्ञान ने पैदा की है। आप जो खाते हैं, पहनते हैं, विज्ञान ने पैदा किया है। आज जो पूरा आवागमन का साधन है, विज्ञान ने ही पैदा किया है। आज आपकी जिंदगी में जितने भी तरह की सुख-सुविधाएं हैं, सब विज्ञान की ही देन है।

विश्व में मानव ने जब नदियों के किनारे सभ्यताओं का विकास किया तो इन सभ्यताओं के विकास में वैज्ञानिक चेतना का बड़ा योगदान रहा। मनुष्य की जिज्ञासाओं ने इस चेतना को सबलता प्रदान की। विश्व के इतिहास में आग की खोज, पहिये का अविष्कार, कृषि का आरम्भ और इंजन की खोज ने दुनिया के आधुनिक स्वरूप को बनाने में मदद की अर्थात यह सभी चीजें सिर्फ इसलिए संभव हो पाई क्योंकि मनुष्य ने चीजों को परम्परागत तरीके से न देखकर, एक अलग तरह की चेतना से देखना आरम्भ किया जिसे आज हम वैज्ञानिक चेतना कह रहे हैं।

भारत वर्तमान समय में द्वंद्व के दौर से गुजर रहा है। विज्ञान हमें अच्छा भी लगता है, परन्तु एक सीमा तक परम्परा हमें अच्छी लगती है। आज हमारा समाज न तो पूरा परम्परावादी है, न ही पूरा वैज्ञानिक है। कुछ शक्तियाँ परम्परा की तरफ ले जाना चाहती हैं, जिद्द कर रही हैं और कुछ जरूरतें विज्ञान की तरफ ले जाना चाहती हैं, क्योंकि परम्परा में उसका समाधान नहीं है। आज यहाँ पर हमें यह सोचना जरूरी है कि क्या भारतीय समाज हमेशा से ऐसा ही रहा है? ऐसा नहीं है।

दुनिया की सभ्यताओं में समाज के अंदर ज्ञान-विज्ञान को लेकर जब अंधकार था, यूरोप जिसको आप आधुनिक काल का जन्मदाता मानते हैं, वहाँ भी विज्ञान का विकास 16 वीं सदी के बाद हुआ। डेकार्ट, स्पिनोजा, कान्ट आदि दार्शनिक पैदा हुए; डार्विन, ब्रूनो, गैलेलियो आदि वैज्ञानिक पैदा हुए, उनका इतिहास 1500 ई. के बाद का है। अमेरिका उसके बाद की उत्पत्ति है। मिस्र की सभ्यता और सिन्धु घाटी की सभ्यता, वो प्राचीन सभ्यताएं हैं, जहाँ ज्ञान-विज्ञान को लेकर चर्चाएं हुई। भारत और मिस्र दो परस्पर केंद्र रहे हैं, जहाँ ज्ञान-विज्ञान पर काफी काम हुआ है।

भारत में सामाजिक स्तर पर जब हम वैज्ञानिक चेतना की बात करते हैं तो इसकी जड़ें हमारे इतिहास से जुड़ती हैं। भारत में प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता में यदि उस समय की नगर की बसावट की संरचना को देखें तो वह वैज्ञानिक तरीके से बसाये गए थे। भारतीय समाज की जब आप बात करेंगे और वैदिक काल में जाएंगे तो वहां चार वेद पैदा होते हैं। वे कैसे पैदा होते हैं? अगर सब

कुछ हम मान लेते हैं तो नया तर्क नहीं पैदा होता। नई चीज नहीं पैदा होती। आयुर्वेद, जो आज का नहीं, बहुत पुराना ग्रंथ है। वह तर्क के आधार पर ही तो पैदा हुआ है। मान लेते तो शायद नहीं होता। उन्होंने तो खोज की। हमारी समस्याएँ थीं। उन समस्याओं के समाधान के लिए उन्होंने खोज की। जैसा कि मैं कई बार आप से कहता रहा हूँ, धर्म जब तर्क के आधार पर बढ़ता है तो वह दर्शन बनता है, दर्शन से फिर विज्ञान पैदा होता है।

एक बात आपसे स्पष्ट करना चाहता हूँ कि ज्ञान, धर्म और अंधविश्वास इन तीनों में बहुत अन्तर है। आमतौर पर जब हम वैज्ञानिक चेतना की बात करते हैं तो धर्म, अंधविश्वास और आडंबर को एक कर देते हैं। धर्म अलग चीज है। आडंबर और अंधविश्वास अलग चीजें हैं। अंधविश्वास एवं आडंबर विज्ञान के विरोधी तत्त्व हैं। धर्म व्यापक अर्थों में विज्ञान का विरोधी नहीं रहा है लेकिन वर्तमान में अगर देखें तो दोनों के बीच एक बड़ा अंतर है जहाँ विज्ञान सबसे नवीनतम खोजों को मान्यता देने के लिए उत्सुक रहता है वहीं धर्म में सबसे प्राचीनतम धारणाओं को मान्यता देने की जिद्द रहती है। धर्म वह है जो आप धारण करते हैं। धारण करने में आप तर्क-शक्ति को भी धारण कर सकते हैं। वैज्ञानिक शक्ति को भी धारण कर सकते हैं और अंधविश्वास को भी धारण कर सकते हैं। आप क्या धारण करते हैं? वह धर्म है। धर्म जो है, यह धीरे-धीरे अंधविश्वास और अज्ञानता का प्रतीक बन गया है।

दूसरी बात धर्म के अंदर यह है कि ये जो पूरी सृष्टि है, इसका रचनाकार कौन है? उस रचनाकार की खोज में इस देश के अंदर बहुत काम हुए हैं। इस देश के अंदर चार्वाक दार्शनिक पैदा होता है जो कहता है - भगवान नहीं हैं। इस देश के अंदर बौद्ध दर्शन पैदा होता है। महात्मा बुद्ध भी इसी धरती पर पैदा हुए थे। जिन्होंने सारी सृष्टि को लेकर, सारे संबंधों को लेकर, एक नया तर्क किया और नए सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जिसमें कार्य-कारण का सिद्धांत प्रमुख है। उन्होंने प्रकृति आधारित संरचना के लिए ज्ञान को सामने रखा। इसी धरती पर महावीर भी पैदा हुए जिन्होंने अहिंसा एवं स्याद्वाद जैसे महत्वपूर्ण सिद्धांत दिए। इसी धरती पर न्याय, सांख्य, योग दर्शन पैदा होते हैं। इसी धरती पर वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त दर्शन पैदा होते हैं। यह जो सारे दर्शन हैं, भारत में कैसे पैदा

होते हैं? वह तर्क से पैदा होते हैं। नए रास्ते की तलाश में पैदा होते हैं। क्योंकि जब आप यह मान लेते हैं कि यह अंतिम सत्य है तब तर्क खत्म हो जाता है। जब तर्क खत्म हो जाता है तो दर्शन खत्म हो जाता है और जब दर्शन खत्म हो जाता है तो विज्ञान के रास्ते बंद हो जाते हैं। फिर वहीं पर दुनिया के आगे बढ़ने के रास्ते का अन्त हो जाता है।

भारत आज जहाँ खड़ा है पहले ऐसा नहीं था। इसी भारत में महर्षि कणाद के वैशेषिक दर्शन में परमाणुवाद का सिद्धान्त विकसित होता है, इसी भारत के पुरातन सभ्यता में पतंजलि द्वारा योग की परम्परा आरम्भ होती है। इसी भारत में आर्यभट्ट के द्वारा त्रिकोणमिति के सूत्र दिए गए, खगोलीय गणनाएँ की गई। भारत के अंदर और भारत के लोगों के अंदर यह हिम्मत थी कि हर तरह के तर्क करने की प्रक्रिया को समाज में स्वीकार किया जाता था। लेकिन आज के समय, खासतौर से ब्रिटिश गुलामी के बाद हमारे अंदर एक तरह का डर पैदा हुआ। मनोवैज्ञानिक तौर पर हमनें तर्क करना बंद कर दिया। फिर धीरे-धीरे हम आडंबर की तरफ बढ़ गए।

जब आप अपनी किसी समस्या का समाधान नहीं निकाल पाते हैं तो आप दूसरा रास्ता ढूँढने लग जाते हैं। जब तक आपकी दुकान, आप की गाड़ी ठीक चल रही होती है, आपको किसी की याद नहीं आती है। लेकिन जब आप अपनी जिंदगी में किसी संकट के अन्दर फँस जाते हैं और आपको कोई समाधान नहीं दिखता, सब कुछ आजमाने के बाद भी जब कोई समाधान नहीं मिलता और सारे दरवाजे बंद हो जाते हैं तब आदमी अंधविश्वास की तरफ बढ़ता है।

कुल मिलाकर कहना यह है कि भारतीय समाज में जिस ज्ञान-विज्ञान की आप बात कर रहे हैं, वह भारत में ही पैदा हुआ है। कारण क्या था कि हम किसी भी चीज को जानने के लिए किसी भी हद तक जा सकते थे। लेकिन वह परम्परा खास तौर पर अंग्रेजों के आने के बाद इस देश के अंदर धीरे-धीरे खत्म हुई है। हम सब अर्जित किया हुआ ज्ञान धीरे-धीरे खोते चले गए। हमारा आत्म विश्वास धीरे-धीरे कम होता गया और आज भी जो मनोवैज्ञानिक गुलामी है, वह हमारे मानस पटल पर पड़ी हुई है।

दुनिया के अंदर या मिस्र में जो भी विज्ञान की खोज हुई वह अंग्रेजी भाषा में नहीं हुई। भाषा से ज्ञान-विज्ञान नहीं चलता। अगर चीन ने विज्ञान की खोज की तो वह अंग्रेजी भाषा में नहीं की। भारत में जितने भी ज्ञान-विज्ञान पैदा हुए, वह अंग्रेजी भाषा में नहीं हुए। लेकिन आज अंधविश्वास फैला हुआ है कि अगर बच्चों को आगे बढ़ाना है तो अंग्रेजी पढ़ाओ। ज्ञान-विज्ञान किसी भाषा का मोहताज नहीं रहा है। हमारे दिमाग पर गुलामी की परतें इतनी गहरी हो गयी हैं और उसका अंजाम यह है कि हम न परम्परा को छोड़ पा रहे हैं और न विज्ञान को अपना पा रहे हैं। क्योंकि परम्परा हमें जकड़ लेती है। लेकिन सब लोग विज्ञान को भी अपनाना चाहते हैं। यह बात गरीब से गरीब आदमी को भी लगती है। कट्टर से कट्टर आदमी को भी लगती है। चाहे वह मुस्लिम कट्टर हो, चाहे हिंदू कट्टर हो। चाहे किसी भी धर्म को मानने वाला हो। उनको भी लगता है कि हमारे बच्चे को ऐसी पढ़ाई मिलनी चाहिए जिससे वह आगे बढ़ सके। लेकिन उनको परम्परा को छोड़ने से भी डर लगता है। तो अभी जो भारतीय समाज का मानस है, जरूरी है कि हम सीखें, पर उससे भी ज्यादा जरूरी है - भारतीय समाज की जो गौरवशाली वैज्ञानिक चेतना की परम्परा रही है, शास्त्रार्थ की परम्परा रही है, सच को सच कहने की परम्परा रही है, सुनने-पढ़ने के साथ-साथ जानने की जो परम्परा रही है, हम उस परम्परा को पुनः जीवित करें। उस पर आगे बढ़ने की आवश्यकता है।

भारतीय समाज का जो भी सकारात्मक पहलू है, वह दबता जा रहा है। आज परम्परा और संस्कृति के नाम पर नकारात्मक चीजों को हम अपनाने की कोशिश कर रहे हैं। हमें बुद्ध को अपनाने में डर लगता है। उसकी वैज्ञानिक चेतना को अपनाने में भी डर लगता है। बुद्ध की प्रतिमा घर में रखना फिर भी फैशन है। लेकिन उनकी सोच पर चलना कठिन काम है। महावीर को अपनाने वाले भी भारत में बहुत हैं। पर उनकी सोच की तरफ बढ़ना नहीं चाहते। उनके दर्शन पर आगे बढ़ने से हम कतराते हैं। मेरा सोचना यह है कि दुनिया के अंदर आज जो ज्ञान-विज्ञान आप देख रहे हैं। उसको भी सीखने की जरूरत है। लेकिन मुझे लगता है कि भारत का आत्मबल और आत्मविश्वास तब जागृत होगा, जब यहाँ के जनमानस को, भारतीय समाज की जो सकारात्मक ताकत है, उसको पुनः जीवित किया जाएगा।

हमारे भारतीय समाज और भारतीय परम्परा में जो वैज्ञानिक चेतना रही है, वह बहुत बड़ी भारतीय विरासत है। किसी देश में एक-दो दार्शनिक पैदा हुए हैं। हमारे देश में अनेक दार्शनिक पैदा हुए। उसी दार्शनिक और वैज्ञानिक सोच पर हमने विज्ञान को तब विकसित किया था जब दुनिया के अंदर सभ्यताओं का इतिहास अंधकार में था। लेकिन वह चीजें विलुप्त होती गई। दूसरी चीजें हावी होती गई और अंग्रेजों की गुलामी ने बहुत सारी चीजों को तोड़ दिया। इस देश के अंदर अकबर जैसा महान शासक पैदा हुआ और आप कभी पढ़ना कि अकबर ने हिम्मत की थी 'दीन-ए-इलाही' को चलाने की। उसने एक नई परम्परा और सत्ता को पूरे देश के अंदर विकसित किया था। उसके बाद उसे लगा कि समाज में केवल सत्ता स्थापित करने से जो तरक्की होनी चाहिए, वह नहीं हो रही है। 'दीन-ए-इलाही' के माध्यम से काम शुरू किया। सोच को बदलना शुरू किया। वह बहुत दूर तक नहीं जा पाया। परंतु उसने काम किया।

कबीर पैदा हुए और इसी भारत के अन्दर पैदा हुए। उसी काशी के अन्दर पैदा हुए जिस काशी के अन्दर कैलाश को मानने वालों की बहुतायत है। इसी भारत के अन्दर तमाम वैज्ञानिक चेतना की वह धाराएँ पैदा होती हैं, जो हमारी परम्परा से आती है। कबीर ने इंग्लैंड़ और अमेरिका से चेतना नही सीखी थी। कबीर ने इसी भारत की विरासत, परम्परा और संस्कृति, जिसे खत्म करने की कोशिशें चल रही थी, उसे पुनः जीवित किया था।

मेरा कहना यह है कि भारत को अपने विरासत के सकारात्मक पहलुओं को जागृत करने की जरूरत है। आर.एस.एस. की बात बार-बार आती है क्योंकि वह एक प्रभावशाली संगठन है। वह राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति और राष्ट्रवाद तीनों बिंदुओं को लेकर जिस दिशा में काम कर रहा है, वह नकारात्मक है। भारतीय समाज की हर उस वैज्ञानिक चेतना और महान शक्ति को, जिससे कल भारत को महान बनना है, उसको वह छोड़ना चाहता है और अंधविश्वास तथा जो नकारात्मक ताकत है, उसको हमारे भारतीय समाज पर थोपना चाहता है। उससे हमारा समाज आगे नहीं बढ़ सकता है।

मैं बार-बार कहता हूँ कि हर इंसान के अंदर नकारात्मक ताकत भी होती है और सकारात्मक ताकत भी होती है। वर्तमान में हमारे देश के पास नकारात्मक

ताकत भी है और सकारात्मक ताकत भी है। लेकिन नकारात्मक शक्तियों का वर्चस्व आज की तारीख में थोड़ा ज्यादा है। इसका मतलब यह नहीं है कि सकारात्मक शक्तियाँ खत्म हो गई हैं। सकारात्मक शक्तियाँ भी जीवित हैं। वो भी अपनी तरह काम कर रही हैं। फर्क पड़ रहा है, धीरे-धीरे सोच बदली भी जाएगी।

वैसे ही इतिहास के पन्नों में भी हमारे पास रूढ़िवाद और अंधविश्वास की बहुत लम्बी विरासत है। लेकिन उससे ज्यादा मजबूत अगर खासतौर से ईसा पूर्व आप जाएंगे तो हमारे भारतीय समाज के अंदर सकारात्मक और वैज्ञानिक चेतना की भी बहुत लंबी विरासत है और उस विरासत को मुझे लगता है कि पुनः जीवित करने की जरूरत है। अगर वहाँ से आप अपने ज्ञान-विज्ञान को जोड़ करके और आधुनिक दुनिया की जरूरतों के हिसाब से अपनी सोच को आगे बढ़ाते हैं तो सफलता मिलेगी। क्योंकि भारतीय समाज की चेतना तब तक जागृत नहीं होगी जब तक वैज्ञानिक मानसिकता के आधार पर समाज आगे नहीं बढ़ेगा।

आज तमाम दुनिया में ज्ञान-विज्ञान में जो तरक्की देख रहे हैं, उसकी पृष्ठभूमि में अगर आप तलाशें तो भारतीय बेटे-बेटियाँ आपको हर क्षेत्र में मिल जाएंगे। भारत के मानस में कमजोरी नहीं है। आज जो परिस्थितियाँ पैदा हुई हैं, सामाजिक भी, राजनीतिक भी और आर्थिक भी, इन परिस्थितियों में सबसे उच्च क्षमता वाले जो दिमाग हैं, उसके लिए भारत में उचित जगह नहीं बनाई जा रही है। वे भारत को छोड़ने के लिए मजबूर हैं। हमें एक ऐसे माहौल को बनाने की जरूरत है जिसका मैं बार-बार जिक्र करता हूँ, इन सारी परिस्थितियों में राजनीतिक शक्ति सबसे महत्वपूर्ण कारक है। अगर इस राजनीतिक क्रांति को भारत में अंजाम दिया जाए तो सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ बदलेंगी और एक ऐसा माहौल बनेगा कि भारत के बेटे-बेटियाँ, जो सब से महत्वपूर्ण दिमाग रखते हैं, भारत के अंदर ही ज्ञान-विज्ञान के नए रास्तों को खोज सकते हैं, नया भारत बना सकते हैं। अपनी परम्परा को भी आगे बढ़ा सकते हैं। पूरी दुनिया के अंदर नए ज्ञान-विज्ञान के रास्ते को बना सकते हैं।

आज यह समझने की जरूरत है कि भारत में वैज्ञानिक चेतना का विकास इतना धीमा क्यों हो गया। भारतीय संविधान का आर्टिकल 51(।) भी यही कहता

है कि 'भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह – वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।' हमारे देश के युवाओं को अंधविश्वास की रुढ़िवादी मानसिकता को तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ध्वस्त करना होगा। इस बौद्धिक गुलामी से बचना होगा। चूँकि यदि आपकी सोच स्वतन्त्र होगी तभी वह स्वतन्त्र विचारों को अपना सकती है। विचारों से चिंतन बनेगा और यह चिंतन पुनः वैज्ञानिक चेतना का पुनर्जागरण करेगा।

❑❑❑

अध्याय
9

संविधान और उसके मूल्यों की रक्षा

आमतौर पर संविधान को नियमों और उपनियमों का एक ऐसा लिखित दस्तावेज माना जाता है, जिसके आधार पर किसी राष्ट्र की सरकार का संचालन किया जाता है। यह देश की राजनैतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का बुनियादी ढाँचा निर्धारित करता है। लेकिन भारतीय संविधान को सिर्फ नियमों और उपनियमों का दस्तावेज भर नहीं माना जा सकता। अंग्रेजों की लम्बी गुलामी के बाद भारत ने अपने संविधान के जरिये पूरी दुनिया के सामने अपनी संप्रभुता, स्वतंत्रता और स्वशासन की क्षमता को अभिव्यक्त किया और साथ ही पूरे देशवासियों के सामने देश को आगे बढ़ाने की एक मुकम्मल राह दिखाई, एक रौशनी मुहैया कराई।

भारतीय संविधान और उसके मूल्यों की जब हम चर्चा करते हैं तो कुछ बातों को समझना जरूरी है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण यह जानना है कि हमारे लिए भारतीय संविधान का महत्त्व क्या है। जो भारतीय संविधान आज हमारे पास है, वह अनादिकाल से नहीं है। भारत में जब अंग्रेजों का राज था तो अंग्रेज यह समझते थे कि शायद भारत के लोग संविधान नहीं बना पाएंगे और उनके द्वारा इस तरह की चुनौती दी गई। बाद में देश आजाद हुआ और देश ने अपना संविधान बनाया। भारत के संविधान को सम्पूर्ण विश्व में बड़ी इज्जत के साथ देखा जाता है। संविधान नागरिक और सरकार के बीच एक प्रकार का अनुबंध है जिसके तहत सरकार की शक्तियों को नियंत्रित किया जा सके, जिससे सरकार अपनी शक्तियों का दुरूपयोग न कर सके और नागरिक भी देश की बेहतरी के लिए देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे।

संविधान एक कानूनी अनुबंध है जिसमें सरकार को निर्देशित किया जाता है कि वह हर नागरिक को समानता का अधिकार सुनिश्चित करे यानि सरकार

किसी भी नागरिक के साथ धर्म, लिंग या अन्य किसी और वजह से भेदभाव नहीं करेगी। सरकार को संविधान द्वारा बहुत सारे अधिकार दिए गए हैं लेकिन संविधान सरकार को निर्देशित करता है कि सरकार नागरिकों को संविधान द्वारा प्रदत्त समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार इत्यादि को सुनिश्चित करेगी।

कोई भी देश जब संविधान बनाता है तो वह अपने अतीत के सकारात्मक और नकारात्मक अनुभवों से सीख लेकर के एक नए भविष्य की शुरूआत करता है। इस नए आगाज में नए दिशा-निर्देश के साथ यह देश कैसे आगे बढ़ेगा, यह सब संविधान में लिख देते हैं। यह एक ऐसा अनुबंध है जिसके तहत नागरिक और सरकार दोनों बंधे हुए हैं। संविधान सरकार और नागरिक दोनों को अधिकार देता है और साथ-साथ दोनों को नियंत्रित करता है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि नागरिकों को पहले से कोई अधिकार नहीं थे, जो भी आज मानवाधिकार हैं या नागरिकों के अधिकार हैं, उनमें से ज्यादातर हमेशा से हैं। जो देश अपने संविधान का सम्मान नहीं करते, ऐसे देशों को असफल देशों की श्रेणी में रखा जाता है और वह देश तरक्की नहीं कर पाता है। वह देश तरक्की करता है जो अपने संविधान का सम्मान करता है।

किसी राष्ट्र के लिए संविधान इतना महत्वपूर्ण होने के बाद भी हमारे देश के कुछ तथाकथित लोगों को इसकी महत्ता अभी भी समझ में नहीं आ रही है। जब संविधान बनकर तैयार हुआ, उसी समय देश के एक वर्ग को संविधान पसन्द नहीं था और उन्होंने संविधान का खुलकर विरोध किया। कुछ लोग यह चाहते थे कि मनुस्मृति और उसके सिद्धान्त संविधान की बुनियाद बनें, लेकिन संविधान सभा में बड़े ही विकासवादी और उदारवादी विचारधारा के लोग थे, जिन्होंने पश्चिमी देशों के उदारवादी लोकतंत्र के समानतावादी विचारधारा को स्वीकार किया। छूआछूत को पूरी तरह से नकार दिया गया और सबको समान बना दिया गया। संविधान का विरोध करने वाले लोगों का कई विषयों पर एतराज था, जिनमें से पहला धर्म की आजादी - जैसे मंदिरों के कपाट सब लोगों के लिए खोल दिए जाएंगे। मंदिरों में प्रवेश के लिए कानून बने, जिससे जो पुराने

रूढ़ीवादी लोग थे उनको यह लगा कि यह उनके धर्म में दखलअंदाजी है। वह लोग जिनको असमानता में विश्वास था, उनको समानता का विचार पसंद नहीं आया। संविधान सभा द्वारा संविधान के सकारात्मक प्रावधानों के पक्ष में जो तर्क दिए गए, वे ये थे कि समाज में असमानता है और यदि हम समाज में समानता स्थापित करना चाहते हैं तो वंचित-शोषित समाज के लोगों लिए विशेष प्रावधान करने पड़ेंगे। इसी के मद्देनजर संविधान में अनुच्छेद 14 से 18 तक के प्रावधान किए गए। डॉ. अंबेडकर ने उस समय कहा था कि केवल राजनैतिक समानता से हम पिछड़े वर्ग का उत्थान नहीं कर सकते, हमें उनका सामाजिक और आर्थिक उत्थान करना भी आवश्यक है।

वर्तमान स्थिति में जब हम बेरोजगारी, आर्थिक संकट, गरीबी, शिक्षा जैसे अहम मुद्दों पर चर्चा करते हैं तो संविधान की प्रस्तावना को इन सभी मुद्दों के परिप्रेक्ष्य में समझना बहुत जरूरी है। आज युवा वर्ग संविधान को सिर्फ परीक्षा पास करने के लिए याद करता है और जब वह भविष्य में कार्यशील होता है तो वह संविधान शब्द को सिर्फ सरकारी तंत्र में प्रयोग होते हुए सुनता और देखता है जबकि संविधान हमें इस तरह याद रहना चाहिए जैसे हम अपने ग्रंथों - रामायण, महाभारत, गीता, कुरान, बाइबिल और गुरु ग्रंथ साहिब को याद रखते हैं। भारतीय संविधान में भारत के अंदर जितने भी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर पर संघर्ष चले, उन सभी के समाधान का रास्ता है, इसे हमारे पूर्वजों ने अपने विवेक के अनुसार निर्धारित किया जिससे कि आगे का भारतीय समाज अपनी तरक्की का रास्ता ढूंढ सके।

देश रामायण, गुरुग्रंथ साहिब, कुरान, बाइबल या किसी अन्य धर्मग्रन्थ से नहीं चलता और चल भी नहीं सकता। देश हम सबके के दिलों में धड़कता है। देश केवल और केवल संविधान से चल सकता है, उसके बिना देश की परिकल्पना करना व्यर्थ है। जब एक ग्रंथ के आधार पर देश चलने लगे तो दूसरे ग्रंथ के आधार पर चलने वाले लोग उसके पराए हो जाएंगे। उसी तरह देश अगर किसी एक जाति की परम्परा या एक भाषा के आधार पर चलने लगे तो दूसरी जाति या भाषा वाले लोग उसके लिए पराए हो जाएंगे। इसलिए देश कभी धर्म ग्रंथ, भाषा या जाति विशेष के आधार पर नहीं चलता।

देश को संचालित करने का सबसे अच्छा रास्ता केवल संविधान ही है। मानव सभ्यता के संघर्ष से दुनिया में जो चीजें पैदा हुई, उसी के संकलन से भारतीय संविधान बना। देश को आगे बढ़ाने के लिए जो सच्चा रास्ता है, वह बस संविधान ही है। संविधान क्या है? संविधान वह है जो देश के लोगों को एक साथ लेकर तरक्की का रास्ता बनाता है। विवादों को खत्म कर आगे बढ़ने की राह दिखाता है। वह संविधान ही है। अगर देश की बात नहीं है और सिर्फ बंगाली, पंजाबी, मलयाली, हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख या ईसाई की ही बात है तो बहुत सारे रास्ते हैं, पर अगर देश की बात है तो वह केवल संविधान से ही हो सकती है।

संविधान में बहुत सारे अनुच्छेद हैं जो कि अलग-अलग समय में जोड़े गए। अनुच्छेद न तो पहला रास्ता है, न ही आखिरी। मानव सभ्यता और संस्कृति का लम्बा इतिहास है। इन सभी अनुच्छेदों के बिना भी मानव सभ्यता ने खुद को आगे बढ़ाया है। कल अगर ये अनुच्छेद न भी रहें, नए अनुच्छेद पैदा कर समाज तो तब भी आगे बढ़ेगा। अनुच्छेद किसी भी समाज के व्यक्ति की जीवन पद्धति को सीमित नहीं कर सकता। लेकिन पद्धतियों के संचालन के लिए अनुच्छेद की आवश्यकता पड़ती है और उसी आवश्यकता के अनुरूप संविधान हमारे समक्ष है। आज हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि संविधान को खत्म करने की साजिश हो रही है। इसलिए देश के लोगों के लिए संविधान का संरक्षण एवं उसके मूल्यों की रक्षा करना बेहद जरूरी है।

प्रस्तावना के शुरुआत की पंक्ति है - हम, भारत के लोग - यह एक बहुत ही खूबसूरत पंक्ति है। भारत को संचालित करने का बुनियादी ढाँचा संविधान है और संविधान की प्रस्तावना क्या कहती है? हम, भारत के लोग। इससे एक टीम बनने की भावना पैदा होती है, और लोगों की जब बात आती है तो सकारात्मक राष्ट्रवाद की मूल भावना संविधान में निहित है। 'हम, भारत के लोग' से जब संविधान शुरू होता है तो चाहे वह तमिलनाडु के समुंद्र के किनारे पैदा हुआ कोई मछुआरा हो, जम्मू-कश्मीर की आखिरी बर्फ की पहाड़ियों के नीचे झोपड़ी में पैदा हुआ परिवार हो, मणिपुर के आखिरी जंगलों में रहने वाला नागा परिवार हो या कच्छ के रेगिस्तान में अपनी जिंदगी से जूझ रहा कोई भारतीय हो, ये सब 'हम, भारत के लोग' में शामिल है। हम जब भारत की बात करते हैं तो

अलग-अलग जाति के लोग एक देश बन जाते हैं। अलग-अलग दिखने, बोलने वाले एक देश बन जाते हैं या हम अलग-अलग धर्म के लोग एक देश बन जाते हैं।

संविधान की नजर में देश के सभी नागरिक चाहे वो अमीर हो, गरीब हो, किसी भी क्षेत्र, भाषा या संस्कृति को मानने वाले हों, किसी भी धर्म या जाति के हों, भारत के लोग हैं। संविधान ही देश को आगे बढ़ा सकता है। अगर हम सिर्फ धर्म के आधार पर देश को आगे बढ़ाने की बात करते हैं तो ये देश कभी तरक्की नहीं कर सकता और यह एक तथ्य है कि विश्व में धर्म की वजह से बहुत खून-खराबा हुआ है और इसीलिए विश्व में कभी भी शान्ति नहीं हो सकती जब तक कि धर्मों के बीच में शान्ति नहीं होगी। देखने को मिलता है कि एक ही धर्म के मानने वाले लोगों में भी आपस में बहुत झगड़े रहे हैं। शिया और सुन्नी आपस में लड़ते रहते हैं, वैष्णव और शैव आपस में झगड़ते रहे हैं। प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक आपस में लड़ते रहते हैं। समय-समय पर अलग-अलग धर्मों के बीच और एक ही धर्म के अलग-अलग समूहों के लोगों के बीच अनेकों युद्ध हुए।

यह संविधान भारत के लोगों ने बनाया है। हम, भारत के लोग भारत को एक सम्प्रभु राष्ट्र बनाना चाहते हैं। सम्प्रभु राष्ट्र वह राष्ट्र होता है जिसको यह अधिकार होता है कि वह जो चाहे विदेश नीति बना सके। कोई देश हमें निर्देशित नहीं कर सकता कि हमें नीतिगत क्या फैसले लेने हैं। हम अपने फैसले स्वयं लेते हैं। हमें किसी भी प्रकार का कानून बनाने का पूरा अधिकार और स्वतंत्रता है। लेकिन हम जो भी कानून बनाएंगे वह मौलिक अधिकारों का हनन नहीं करेगा। हमें कोई विदेशी ताकत नहीं बताएगी कि हम किस देश से कैसा सम्बन्ध रखेंगे।

वर्तमान समय में भारत की सम्प्रभुता के साथ समझौता किया जा रहा है क्योंकि आज संसद में जो भी नीतियां बनती हैं, वे सभी दूसरी महाशक्तियों के प्रभाव से बनती हैं। आज भारत की राजनीति एवं अर्थनीति पर उन्हीं का ही प्रभाव है। इसलिए ही भारत में नोटबंदी लागू की जाती है, यह किसी तथाकथित देशभक्त के दिमाग की उत्पत्ति नहीं है। नोटबंदी भारत के सम्पूर्ण प्रभुत्व के ऊपर हमले की तरह है। नोटबंदी की जरूरत देश को नहीं थी। यह विश्व बैंक और आई.एम.एफ. के द्वारा पैदा की गई और उसे भारत पर थोप दिया गया। पहले की

सरकार पर भी यह दबाव था पर उन्होंने यह लागू नहीं किया, मगर तथाकथित देशभक्त ने इसे लागू कर दिया और संविधान की प्रस्तावना की पहली पंक्ति के साथ ही समझौता किया। भारत में विदेशी पूंजी निवेश के लिए रक्षा मंत्रालय को भी खोल दिया गया है, जिस मंत्रालय में कभी सेंध नहीं लगती थी, आज उस मंत्रालय में कोई भी दुनिया के किसी भी कोने से आकर पूंजी निवेश के नाम पर हमारी देश की सुरक्षा के इंतजामों का जायजा ले सकता है। देशभक्ति का मुखौटा लगाकर संविधान के पहले मूल्य के साथ ही समझौता हो रहा है, जिससे भारत की आतंरिक सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है।

संविधान में अर्न्तनिहित समाजवाद इस बात पर जोर देता है कि भारत में संपत्ति का केन्द्रीकरण नहीं होगा। जो देश में मौजूद संसाधन हैं उनका इस तरह से विभाजन होगा कि वे सबके फायदे के लिए हो। आज दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि देश के एक फीसदी लोगों के पास देश की 70 फीसदी से ज्यादा संपत्ति है। इसका मतलब यह है कि जो अमीर है वह और अमीर होता जा रहा है और जो गरीब है वह और गरीब होता जा रहा है। हमारे देश का समवेशी सर्वांगीण विकास सिर्फ राष्ट्रीयकरण के मॉडल से संभव नहीं है और मैं दावे के साथ कह रहा हूँ कि निजीकरण के मॉडल से तो ये कतई संभव नहीं है। भारत के सर्वांगीण विकास के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को धरातल पर मजबूती से उतारने की जरूरत है। जिसमें सरकारी और निजी प्रणाली दोनों साथ-साथ काम करेंगी। हमारे तथाकथित देशभक्त संविधान में समाजवाद की विचारधारा को अपनाने को तैयार नहीं हैं बल्कि अमीर को और अमीर और गरीब को और गरीब कर रहे हैं।

किसी परिवार में यदि चार बच्चे हैं और उनमें से एक को तो दूध मिल रहा है और दूसरे से कहा जाए कि तुम प्रतिस्पर्धा करो तो यह बिल्कुल सही नहीं है। देश के अंदर आज जो समाजवाद का मूल्य है उससे यह तो नहीं हो सकता कि टाटा, बिड़ला, अडानी, अम्बानी और झुग्गियों में रहने वाला आदमी बराबर हो जाए। देश के सभी नागरिकों को एक मिनिमम आर्थिक समानता की गारंटी होनी चाहिए। उसके बाद उनकी प्रतिभा काम आयेगी। इस देश की अस्सी फीसदी आबादी मजबूरी में जी रही है, सिर्फ दो जून की रोटी के लिए। संसाधनों

की भारत के पास कमी नहीं है। मेरा मानना है कि अगर देश को सबकी तरक्की और खुशहाली की तरफ बढ़ना है तो दुनिया में जो भी प्रयोग हुए हैं, हमें उनकी कमियों-अच्छाइयों से सीख लेकर आगे बढ़ना होगा। भारत की भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक विविधताओं को ध्यान में रखते हुए भारत के संसाधनों का सदुपयोग करके ही भारत को महाशक्ति बनाया जा सकता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद समानता के साथ-साथ प्रतिभा के लिए अवसर की भी गारंटी करना चाहता है, जिससे संतुलित सर्वांगीण विकास हो सके।

संविधान में धर्मनिरपेक्षता की भावना अन्तर्निहित है। विश्व के वो देश जिन्होंने किसी एक धर्म विशेष को राष्ट्र धर्म या राज्य धर्म बना दिया, वो असफल हुए हैं। बहुत से इस्लामिक देश तथा नेपाल जैसा देश जो कभी हिन्दू राष्ट्र था, उनके उदाहरण हमारे सामने है। अगर कोई एक विशेष धर्म सरकार का धर्म बन जाता है तो वह धर्मतंत्र बन जाता है और इससे सबसे ज्यादा नुकसान उसी धर्म का ही होता है। अगर सरकार उस धर्म को राष्ट्र धर्म या राज्य धर्म घोषित कर देगी तो इसके बाद सरकार अपने फायदे के लिए उस धर्म की विवेचना भी करेगी, उसको नियंत्रित भी करेगी, उसकी व्याख्या भी करेगी और उसको संचालित भी करेगी। इसीलिए देश में धर्मों की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए एवं सरकार को सुचारू तरीके से चलाने के लिए सरकार और धर्म का आपस में बेवजह हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। हमारे देश में जनता प्रत्येक पांच साल में सरकार का चुनाव करती है। हमारे इस लोकतंत्र में कुछ कमियां हैं। आज भी हमारे देश में पार्टियों के भीतर आन्तरिक लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र चुनाव पर निर्भर है। आज निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए जो सारी कोशिशें की जा रही हैं वह सब महज दिखावे के लिए है। चुनाव में प्रचार के दौरान कुछ चीजें प्रतिबंधित हैं, लेकिन हम सब जानते हैं कि चुनाव के आखिरी दिनों में बड़ी-बड़ी राजनैतिक पार्टीयों द्वारा चुनाव जीतने के लिए जो पैसे बंटते हैं और शराब की पेटियाँ खुलती हैं, उसके आगे चुनाव आयोग भी घुटने टेक देता है। पूरे देश में चुनाव में ज्यादातर नेता जाति, धर्म, क्षेत्र इत्यादि के नाम पर ताण्डव मचाते हैं। उनका मतलब सिर्फ चुनाव के तीन दिन पहले होने वाली प्रक्रिया से

है। चुनाव जीतने के लिए किस तरह वोट खरीदे जा सकते हैं, कैसे संप्रदायिकता का माहौल बनाया जा सकता है, तरह-तरह के हथकंडें आजमाए जाते हैं। आज चुनाव, पैसा और दारू यें तीनों एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। यें सब चीजें लोकतंत्र की बुनियाद को खतरे में डाल रही हैं। इससे बचने के लिए हमे सजगता और सतर्कता के साथ काम करने की जरूरत है।

हमारा संविधान सभी लोगों के लिए सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक न्याय की मजबूती से वकालत करता है। सब जानते हैं कि देश में न्याय मिलता भी है, बिकता भी है और न्याय के लिए लोग दर-दर भटकते भी हैं। किसी आम आदमी के साथ अगर अन्याय हो जाए तो सुप्रीम कोर्ट तक जाना असंभव काम है। कोर्ट का रास्ता इसलिए आया कि जिनके पास कुछ नहीं है, कोई सुनने वाला नहीं है, उनकी भी दरख्वास्त लग सके। मगर लाखों में एक या दो लोग ही सुप्रीम कोर्ट जा पाते हैं, क्योंकि न्याय आज व्यापार बन गया है। जहाँ वकीलों की फीस लाखों में है, वहाँ एक रिक्शेवाले को शायद गेट के अन्दर भी न जाने दिया जाए। वह अगर घुस भी गया तो क्या सुप्रीम कोर्ट के वकील से वह मिल पाएगा? यह हिम्मत पैदा करना ही उसके लिए असंभव काम है। न्याय सच्चा, सम्पूर्ण एवं समय पर मिल सके, इस बात की गारंटी भारत को हर नागरिक के लिए करनी होगी। क्योंकि कोर्ट में फाइलें आज भी न जाने कितनी पीढ़ियों से घूम रही हैं, उन पर तारीख पर तारीख लग रही है और कोई समाधान नहीं निकल रहा है। हर नियम के अपवाद होते हैं मगर भारत के अंदर न्याय के मामले में नियम कम और अपवाद ज्यादा मिलते हैं।

तमाम लोग आप को मिल जाएंगे, जिनके पास पैसा नहीं है, रसूख नहीं है। आजकल पैसा और रसूख के दम पर ही सही वकील मिलता है और सही वकील से न्याय मिलता है। आज का तथ्य यह है कि न्यायालय में न्याय खुद अवतरित नहीं हो पा रहा है। न्यायालय के इतिहास में यहाँ तक हुआ कि न्यायधीशों को प्रेस कांफ्रेंस करनी पड़ी, न्यायाधीशों को कब पता लगा कि न्याय नहीं मिल रहा है, जब उन्हें ही न्याय नहीं मिला। यह जो सिस्टम है, इस सिस्टम की बुनियाद अंग्रेजी राज के समय पड़ी थी। उस समय न्यायपालिका का मतलब भारत के लोगों को न्याय देने का नहीं था बल्कि अंग्रेज न्यायपालिका का

इस्तेमाल भारत पर शासन करने के लिए, क्रान्तिकारियों को नियंत्रित करने के लिए किया करते थे।

दूसरी बात है न्यायपालिका में इस्तेमाल होने वाली भाषा की। सुप्रीम कोर्ट और देश के सभी राज्यों के हाई कोर्ट में कानूनी कार्यवाही सिर्फ अंग्रेजी भाषा में चलेगी, यह अनिवार्य है। अंग्रेजी भाषा न आने की वजह से ज्यादातर लोगों को अनावश्यक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। एक बंगाली भाषा-भाषी को अगर अपनी भाषा में कानूनी कार्यवाही से संबन्धित सुविधा मिल जाए तो उसके लिए बोलना, पढ़ना, समझना आसान हो जाएगा। यह काम करना इतना कठिन नहीं है, लेकिन न्याय अंग्रेजी में ही मिलेगा। न्याय और अंग्रेजी भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं है। आज देश के अन्दर न्याय व्यवस्था को ठीक करने की बहुत जरूरत है। संविधान का जो मूल है उसे संरक्षित करने के साथ-साथ विकसित करने की भी जरूरत है।

आज पूरी कार्यपालिका पर अधिकारियों का तंत्र कब्जा किये है। अधिकारियों द्वारा संविधान की सतरंगी व्याख्या कर उसे अपने मतलब के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि नौकरशाही को हम आजादी के बाद भी भारत की सेवा के लिए तैयार नहीं कर पाए, वो आज भी अपने आप को मालिक समझते हैं। आज भी मानसिकता वही है कि भारतीयों को नियंत्रित करना है। जब नौकरशाही में हुक्म चलाने की बात आती है, तो अधिकारी सीना तान कर आ जाते हैं। जब भी सेवा की बात आती है तो उनका चेहरा गिर जाता है। जब भी सामाजिक हित से जुड़ी कोई फाईल हो, तो अधिकारियों द्वारा फाइल में सात बार लिख दिया जाता है, यह काम ऐसे नहीं हो सकता, यह वैसे नहीं हो सकता। लेकिन भ्रष्टाचार के दम पर कुछ फाइलें चुटकी में पास हो जाती हैं और कुछ फाइलें पीढ़ी-दर-पीढ़ी भटकती रहती हैं। अब तो दो हजार का नोट आ गया है। पहले पांच सौ का नोट ही नियम बदलने के लिए बहुत था।

संविधान को जो पार्टियाँ वोटर बनाने की मशीन, सत्ता पाने का माध्यम समझती है,ऐसी राजनैतिक पार्टियों को उखाड़ फेंकने की जरूरत है। अगर आज प्रशासनिक बदलाव नहीं हुआ तो ये हमारे देश में एक इंच भी बदलाव नहीं होने

देंगे। यह जो पूरा तंत्र खड़ा है, यह संविधान को उसकी आत्मा तक पहुंचाने का नहीं है बल्कि संविधान के रास्ते में एक अवरोधक के रूप में खड़ा है। इसलिए आज बड़े बदलाव की जरूरत है। यह नौकरशाही का तंत्र अगर बदलता है, राजनैतिक बदलाव अगर आता है, तब जाकर हम संविधान की मूल आत्मा को जमीन पर उतार सकते हैं। आज जो संविधान स्वतंत्रता संग्राम के गर्भ से पैदा हुआ है, अगर सही नियत के साथ इसकी मूल भावना और सोच को धरातल पर उतार दिया जाए तो भारत दुनिया में सर्वश्रेष्ठ देश बन सकता है।

❑❑❑

अध्याय
10

लोकतंत्र, मीडिया और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

सामान्य तौर पर जो कुछ चल रहा है, हम सब देख रहे हैं। आज किसी भी टीवी चैनल के दर्शक को यह समझने में देर नहीं लगती है कि चैनल वाला क्या कहना चाहता है और क्यों कहना चाहता है। लेकिन वर्तमान मीडिया के जो हालात हैं उन पर चर्चा करने से पहले, मैं आपको थोड़ा पीछे ले जाना चाहता हूँ। आमतौर पर हम कहते हैं कि लोकतंत्र के चार स्तम्भ हैं विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और पत्रकारिता। इस दुनि या के अन्दर वर्तमान में दो सत्ताएँ स्थापित हैं। एक का नाम लोकतंत्र है जो जनता की तरफ झुकी हुई है, बहुमत की तरफ झुकी हुई है, अवाम की तरफ झुकी हुई है। उसके बारे में सोचने की, समझने की और जनता की भागेदारी के लिए कोशिश करने की प्रक्रिया को लोकतंत्र कहते हैं। वहीं दूसरी तरफ उतनी ही मजबूत और कभी-कभी उससे भी ज्यादा मजबूत जो सत्ता है, वह अर्थतंत्र की सत्ता है। लोकतंत्र के चारों स्तम्भ विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और पत्रकारिता अवाम की बात करते-करते, लोकतंत्र की आवाज उठाते-उठाते, कब अर्थतंत्र के पक्ष में बात करने लगते हैं, यह समझना मुश्किल होता है। इसलिए जब पूरे परिदृश्य को आप समझने की कोशिश करते हैं, तो पाते हैं कि लोकतंत्र के समनांतर एक सत्ता चलती है और वह अर्थतंत्र की सत्ता है।

इतिहास के पन्नों में देखें तो आम लोगों के सामने राजतंत्र की सत्ता थी। आधुनिक युग के विकास के साथ-साथ राजतंत्र, अर्थतंत्र में बदलता है। जनता की चलेगी या पूँजी की चलेगी यह संघर्ष आज का नहीं है पुराना है। और इसलिए अगर आप मीडिया की भूमिका को देखते हैं और उसमें अर्थसत्ता को नहीं देखते हैं, पूँजी की ताकत को नहीं देखते हैं, उसको अगर आप ओझल कर देंगे तो आप पार्टियों में सिमट जाएँगे, आप नेताओं में सिमट जाएँगे, आप सत्ता में सिमट जाएँगे।

मैं यह मानता हूँ कि आज भारत के अंदर लोकतंत्र चाहे जिस रूप में भी हो, भारत में आजादी के बाद से कोई भी सत्ता स्थापित हुई हो, लेकिन तब से आज तक देश सत्तातंत्र पर नहीं, अर्थतंत्र पर चल रहा है, आजादी के बाद भी सत्ता अर्थ की गुलाम है। क्योंकि आज सत्ता को चलाने के लिए संसाधन चाहिए, सत्ता बनाने के लिए चुनाव है, चुनाव जीतने के लिए संसाधन चाहिए और संसाधन अवाम नहीं दे सकती है। संसाधन पूंजीपति देते हैं और अंततोगत्वा यह मीडिया, पूँजी और सत्ता के पक्ष में खड़ी होती है, पूँजी और सत्ता की गुलामी करती है। जब तक इसका समाधान नहीं निकलता है, उम्मीद छोड़ दीजिए कि पूँजी पर निर्भर मीडिया की कोई स्वतंत्र आवाज होगी और वह अवाम के पक्ष में बोल पाएगी। इसलिए किताबों के पन्नों में जो लिखा है, लोकतंत्र के मायने, मीडिया का दायित्व, मीडिया का वर्तमान स्वरूप, किताबों के पन्नों तक ही सीमित होकर रह गया है। क्योंकि आज एक अप्रत्यक्ष सत्ता है, जो आज भारत ही नहीं पूरी दुनिया को भी नियंत्रित करती है, जिसको अखबारों और किताबों में लिखने की भी हिम्मत नहीं है। यह बात सच है कि पत्रकारिता के जन्म या उसके पहले भी, इंसान ने जब से सभ्यताओं का निर्माण किया, चाहे भारत के अंदर हो या दुनिया के अंदर, उसे अपने विचारों को लोगों तक पहुंचाने के लिए माध्यम की जरूरत रही है। क्योंकि एक व्यक्ति हर जगह नहीं पहुँच सकता। कोई भी विचार, कोई भी सोच, कोई भी नया ज्ञान-विज्ञान लोगों तक कैसे पहुँचे, उसके लिए मीडिया की जरूरत थी और इसलिए आप देखेंगे कि दुनिया की सभ्यताओं में अलग-अलग समय पर प्रचार-प्रसार के लिए अलग-अलग माध्यम बने।

हमारे भारत का जो इतिहास है, अगर आप उसकी बुनियाद को देखें तो हमारे यहाँ जब अखबार नहीं छपते थे, पेपर का निर्माण नहीं हुआ था, प्रचार-प्रसार के माध्यम तब भी थे। हमारे जो महर्षि थे, जो ज्ञानी थे, जो ऋषि-मुनि थे, वो जगह-जगह जाते थे, शास्त्रार्थ व प्रवचन करते थे और विचारों को फैलाने का काम करते थे। लेकिन अगर उसके बाद राजतंत्र में आप देखेंगे तो राजदरबार में चारण रखे जाते थे, जिनका काम राजाओं की चरण वंदना करना, राजाओं की जयकार करना, तिल का ताड़ बनाकर राजाओं को महिमामंडित करना होता था।

वे इसलिए रखे जाते थे कि अगर राजसत्ता के ऊपर अवाम में गुस्सा पैदा हो तो उसके विचार को ठंडा किया जा सके। पहले अगर आप देखें तो पुराने जमाने में लोग पेड़ के पत्तों पर लिखा करते थे, ताम्रपत्र पर लिपि आपको लिखी हुई मिलेगी। नए दौर में खासतौर से इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति के बाद दुनिया के अंदर तकनीकी के विकास ने नए-नए रिसर्च किये, नए-नए माध्यम दिए और उसी का परिणाम था कि प्रिंटिंग की तकनीक आने के बाद कागज के अखबार बड़े पैमाने पर छपने लगे।

दुनिया के जितने बड़े-बड़े बदलाव की, जनता की आवाज की, क्रान्तियों का इतिहास आप जानते हो, चाहे वह रूस की क्रान्ति हो, चाहे वह चीन की क्रांति हो, चाहे वह फ्रांस की क्रान्ति हो या चाहे वो अमेरिका की क्रान्ति हो, इन सब क्रान्तियों में लोगों के पास, अवाम के पास अलग-अलग तरह के इतने संसाधन नहीं थे। आज हमारे पास टेलीफोन है, तब टेलीफोन नहीं थे; आज हमारे पास ट्रेन है, तब ट्रेन नहीं थी; आज हमारे पास बस है, तब बस नहीं थी; उस समय आधुनिक आवागमन का कोई साधन नहीं था। आमतौर पर लोगों का जीवन और सभ्यता स्थानीय थी। आज तो हम दूर-दूर के लोगों से मिलते हैं, उनको जानते हैं। एक ऐसा भी समय था जब ज्यादातर लोग पैदल सफर किया करते थे, आमतौर पर लोग जहां तक पैदल जा सकते थे उसके बाहर लोगों को नहीं जानते थे। उसके बाहर वो अपने ही देश को, अपने इलाके को नहीं जानते थे।

अगर हम रूसी क्रान्ति की बात करें तो पूरे रूस को इकट्ठा करने का काम रूस की क्रान्ति के नायक लेनिन किया करते थे। उस समय लेनिन ने कहा था कि 'तोप से ज्यादा कारगर है अखबार', यह सच बात है क्योंकि कोई भी लड़ाई, कोई भी परिवर्तन हथियार से नहीं हो सकता है, शरीर से नहीं हो सकता है, विचार से हो सकता है। और विचार को बड़े पैमाने पर फैलाने का जो सबसे पहला हथियार बना, वह अखबार बना। वह चाहे रूस की क्रांति हो, वह चाहे अमेरिका की क्रान्ति हो, वह चाहे चीन की क्रान्ति हो, तमाम क्रान्तियों में अखबार की अहम भूमिका रही है।

भारत में तो 1857 में बड़े पैमाने पर अखबार न होने के कारण लोगों ने रोटी और कमल को ही सन्देश का माध्यम बना लिया। भारत के अंदर आजादी की

लड़ाई के बारे में बात करते हैं, 1857 की पहली जंग-ए-आजादी के वक्त ज्यादा अखबार नहीं थे। जैसे मैंने पहले कहा कि 1857 की जंग-ए-आजादी के दौरान भारत में आने-जाने के आधुनिक साधन नहीं थे। सन्यासी और फकीर पूरे देश में भ्रमण कर आजादी से संबन्धित सूचना के आदान-प्रदान करने का काम किया करते थे। वो लोग पूरे देश में विचरण करने का काम करते थे, प्रवास करते थे।

1857 की क्रान्ति के दौरान हमारे उस समय के क्रान्तिकारियों ने रास्ता निकाला और मीडिया बनाई "रोटी और कमल"। रोटी और कमल एक गाँव से दूसरे गाँव में भेजे जाते थे। नवाबों और राजाओं को कमल दिया जाता था, उसके साथ संदेश था कि अगर क्रान्ति के हिस्सेदार बनते हो तो कमल स्वीकार करो। जो नवाब या राजा कमल स्वीकार करता था, वह क्रान्ति का हिस्सेदार था। और जो नवाब या राजा कमल स्वीकार नहीं करता था, उसे अंग्रेजों का समर्थक माना जाता था। अवाम के लिए रोटी बनती थी, हर एक गाँव की जिम्मेदारी थी कि वह रोटी बनाएगा और वो रोटी अगले गाँव में पहुंचाई जाती थी। उस गाँव में जो-जो रोटी का टुकड़ा खाता था, वह क्रान्ति का हिस्सेदार माना जाता था और जो नहीं खाता था, वह बागी माना जाता था, अंग्रेजों का समर्थक माना जाता था। और फिर इस गाँव की जिम्मेदारी थी कि वह रोटी बनाता था और दूसरे अपने से आगे वाले गाँव में पहुंचाता था। पूरे हिंदुस्तान के अन्दर क्रान्ति के इस संदेश को रोटी और कमल के माध्यम से पहुँचाया गया। और आप हम सब जानते हैं कि ब्रिटिश कंपनी के राज को हमारे पुरोधाओं ने उखाड़ फेंका।

भारतीय मानस को जगाने का काम लोगों ने अपनी तरफ से मीडिया की तरह किया। लड़ाई आगे बढ़ती है और इस देश के अन्दर अखबार छपने का सिलसिला तेज होता है। प्रेस बनते हैं और इस देश के अन्दर चाहे महात्मा गांधी की विचारधारा हो या फिर चाहे शहीद भगत सिंह की क्रान्तिकारी विचारधारा हो, सब की सब साहित्य और अखबार के माध्यम से आगे बढ़ती है। अगर आपको इतिहास पता हो तो शहीद भगत सिंह उस समय कानपुर से निकलने वाले कीर्ति अखबार में छद्म नाम से एक कॉलम निकालते थे। अंग्रेजों को सबसे ज्यादा डर अखबार और पत्रिकाओं से लगता था। क्योंकि पिस्टल से गोली निकलेगी तो एक

को मारेगी और अखबार निकलेगा तो हजारों के दिमाग को खड़ा कर देगा और इसलिए बार-बार अंग्रेज अखबारों पर प्रतिबंध लगाने का, सामग्री जब्त करने का, प्रेस बंद करने की कोशिश करते रहे। पहले अंग्रेजों के राज में राजद्रोह का सबसे बड़ा अपराधी वह होता था जो आजादी के लिए अखबार और पत्रिका निकालता था। आजादी की लड़ाई में उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम भारत को इकट्ठा करने में अखबारों और पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जैसा कि मैंने कहा राजतंत्र बनाम जनतंत्र का संघर्ष अलग तरह से चला। आजादी की लड़ाई का संघर्ष अलग तरीके से चला। खासतौर से मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि 1990 का जो दशक है, उसमें दुनिया तेजी से बदली। अवाम की आवाज को उठाने की अब तक की जो सर्वश्रेष्ठ और सबसे ताकतवर सत्ता बनी है, वह साम्यवादी क्रान्ति के बाद रूस की सत्ता बनी। और दुनिया में पूँजी की सबसे ताकतवर सत्ता अमेरिका की सत्ता बनी। 1990 के दशक में साम्यवादी देश यू.एस.एस.आर. का विघटन होता है, बिखराव होता है और पूँजी का वर्चस्व पूरी दुनिया के अंदर कायम होता है। आमतौर पर मीडिया की जो भूमिका रही है, वह क्रान्तिकारी संगठनों की रही है, विद्रोह की रही है, सत्ता के सामने कुर्बानी देने के बावजूद भी सच को उठाने की रही है। टेक्नोलॉजी के साथ-साथ आधुनिक मीडिया का निर्माण होता है और उसके पीछे का जो मकसद है वह जनता की आवाज को उठाना नहीं बल्कि जनता की आवाज को नियंत्रित करना है। 1990 से पहले की जो पत्रकारिता रही है, वह जनता की आवाज को उठाने के लिए पैदा होती है। 1990 के बाद की पत्रकारिता का जो स्वरूप आगे बढ़ता है वह सोच समझकर एक स्वरूप पैदाकर जनता को नियंत्रित करने के लिए बनता है।

मीडिया का ऐसा सिस्टम पैदा किया जाता है जो अवाम के दम पर चल ही नहीं सकता। और जब अवाम के दम पर, जनता के दम पर, जो तंत्र खड़ा हो ही नहीं सकता वह जनता कि लिए आज काम करेगा, कल काम करेगा, इसकी उम्मीद करना बेवकूफी से ज्यादा कुछ भी नहीं है। इसलिए कॉरपोरेट के दम पर जो यह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का पूरा साम्राज्य खड़ा हुआ है, यह साम्राज्य कल भी, आज भी और आने वाले कल में भी जनता के लिए काम नहीं कर सकता।

क्योंकि इसे संचालित करने के लिए पूंजी चाहिए और पूँजी अवाम से नहीं आती, पूँजी उनसे आती है जो सत्ता को नियंत्रित करते हैं। सिर्फ एक ही समय पर वह जनता की भाषा बोलने के लिए मजबूर होते हैं जब-जब उनकी विश्वसनीयता (क्रेडिबिलिटी) पर सवाल खड़ा होने लगता है। क्योंकि हर ताकतवर इंसान जब उसकी विश्वसनीयता (क्रेडिबिलिटी) खत्म होने लगती है तो वह छद्म चेहरे को अपनाता है और मीडिया आज इसी स्थिति में खड़ी है। इसलिए आप देखते होंगे कि जब गुलामी करते-करते किसी पत्रकार का जमीर जवाब देने लगता है और वह आवाज उठाने की हिम्मत करता है तो उसे एक सेकेंड के अंदर उस कॉरपोरेट मीडिया हाउस से बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता है।

इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि तीसरा जो बिंदु है, वह है सोशल मीडिया। सोशल मीडिया आज अभिव्यक्ति के लिए एक नया अवसर लेकर आई है, यहाँ पर आप कुछ भी लिख सकते हैं। सोशल मीडिया के बहुत सारे सकारात्मक पहलू हैं लेकिन इसके नकारात्मक पहलू को भी गहराई से समझना होगा। मैं जितना विश्लेषण करने की कोशिश करता हूँ, सोचने-समझने की कोशिश कर रहा हूँ, उसके हिसाब से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से हमारे दिमाग पर जोर पड़ता था, लेकिन सोशल मीडिया ने हमें उदासीन बनाना शुरू कर दिया है। सोशल मीडिया के माध्यम से हमारे दिमाग को नियंत्रित किया जा रहा है।

दुनिया की किसी भी हुकूमत को उखाड़ने का काम जो करता रहा है, वह इंसान का दिमाग है। दुनिया के इतिहास में चाहे जितना बड़ा राजा रहा हो, पूंजीपति रहा हो, कितनी भी बड़ी हुकूमत रही हो लेकिन अब तक हिंदुस्तान ही नहीं, दुनिया के किसी भी बड़े हिस्से के सभी लोगों के दिमाग को कोई गुलाम नहीं बना पाया। कोई ना कोई दिमाग विद्रोह कर ही देता है। वह दिमाग ही है, जो शरीर को एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर संचालित कर देता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने पूंजी के नियंत्रण के साथ-साथ जो काम करना शुरू किया, वो हमारे सोचने की क्षमता को बंद करने का किया। और सोशल मीडिया मुझे थोड़ा सा उससे ज्यादा खतरनाक लग रहा है। आपकी जो भी निराशा है, जो भी भड़ास है, सोशल मेडिया के माध्यम से आप निकाल दीजिए, काम खत्म! सोशल मीडिया के माध्यम से हमारे पूरे देश और यहाँ तक कि पूरी दुनिया के

अंदर एक वैचारिक शून्यता को पैदा किया जा रहा है और जब कोई भी कौम, कोई भी समाज, सोचने की क्षमता को खत्म कर देता है तो उस समाज, राज्य और राष्ट्र का विनाश होना अनिवार्य बन जाता है। इसलिए आज अगर कोई इस देश के बारे में सोचता है, इस दुनिया और मानवता के बारे में कोई सोचता है तो उसे अपने दिमाग को बचाना पड़ेगा। दिमाग अगर शून्य हो जाएगा तो आपका शरीर किसी काम का नहीं बचेगा। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ, अगर लोकतंत्र को बचाना चाहते हो, अगर जनता के हितों के काम को आगे बढ़ाना चाहते हो, तो अपने दिमाग को बचाओ। आज यह समझना जरूरी है कि सोशल मीडिया एक दोधारी तलवार है इसलिए इसका सोच समझकर चौकन्ना रहते हुए उपयोग करना जरूरी है, जिससे इसका समाज के लिए सकारात्मक उपयोग हो सके।

हमारी लड़ाई मीडिया से नहीं है, हमारी लड़ाई विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका से नहीं है। सत्ता या तो लोकतंत्र की है या तो अर्थतंत्र की है, हमारी लड़ाई अर्थतंत्र के अन्याय के खीलाफ है। बीच में सारे माध्यम हैं जो इधर भी चल सकते हैं, उधर भी चल सकते हैं। जैसे पिस्टल अंग्रेज चलाते थे तो हमारे क्रान्तिकारी शहीद होते थे, लेकिन उसी पिस्टल को क्रान्तिकारी चलाते थे तो इस देश के दुश्मन को भी ढेर कर देते थे। यह सिस्टम एक माध्यम है। यह सिस्टम जनता के लिए भी काम कर सकता है और चंद पूँजीपतियों के लिए भी काम कर सकता है। इसलिए सवाल इस बात का है कि ताकत किस की बड़ी है। कई साथियों ने पूछा कि मीडिया की जो स्थिति है उस पर क्या किया जाए? मेरा यही कहना है कि अपने दिमाग को बचाया जाए, दिनभर ट्विटर पर ट्वीटिंग-ट्वीटिंग करने के बाद और फेसबुक पर चकल्लस करने के बाद, टीवी चैनलों की बकवास सुनने के बाद भी आधा घंटा एक घंटा अपने बारे में, इंसानियत के बारे में, समाज के बारे में सोचने के लिए समय निकालना पड़ेगा। अपने दिमाग को बचाओगे यकीन मानो मीडिया को भी सही रास्ते पर ला सकते हो, देश को भी सही रास्ते पर ला सकते हो और नई व्यवस्था को भी निर्मित कर सकते हो। अगर दिमाग खत्म हो जाएगा तो यह पूरा सिस्टम खत्म हो जाएगा, क्योंकि सिस्टम इंसान को नहीं पैदा कर सकता लेकिन इंसान किसी भी सिस्टम

को पैदा कर सकता है। दिमाग रहेगा तो नई मीडिया भी बनेगी और नए भारत के निर्माण का रास्ता भी खुलेगा।

क्रान्ति केवल इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से, प्रिंट मीडिया से या सोशल मीडिया से नहीं होती जैसा कि मैंने कहा कि 1857 की जंग-ए-आजादी के क्रांतिकारियों के पास न मोबाइल था, न टेलीफोन था, न बस थी, न ट्रेन थी, न अखबार था, न इलेक्ट्रॉनिक मीडिया था और न ही फेसबुक-ट्विटर जैसा सोशल मीडिया था, तब भी सत्य की लड़ाई लड़ी गई थी और जीती गई थी। इसलिए मीडिया जहाँ भी जा रहा हो उसको सचेत करना जरूरी है लेकिन वह सुधर इसलिए नहीं सकता क्योंकि उस पर जो नियंत्रण है वह पूँजी का है और पूँजी अवाम की पक्षधर नहीं है। पूँजी अवाम के शोषण पर खड़ी है। इसलिए जो भी लोग देश से मोहब्बत करते हैं, दुनिया से मोहब्बत करते हैं, इंसानियत से मोहब्बत करते हैं, उनको अपने दिमाग को बचाना पड़ेगा और इस बात को सोचना पड़ेगा कि नया रास्ता क्या निकाला जाए? वैकल्पिक मीडिया को खड़ा करना पड़ेगा जिसकी ताकत, जिसकी बुनियाद अवाम के दम पर हो।

मीडिया जब तक जनता के दम पर खड़ी नहीं होती है तब तक अच्छे-अच्छे लोग मीडिया में जाकर भी जिस दिन सीमा रेखा पार करेंगे, उसी दिन निष्कासित कर दिए जाएंगे। इसलिए देश के अंदर जो एक वैकल्पिक आन्दोलन की तरफ अवाम बढ़ रही है उसे अपनी वैकल्पिक मीडिया के बारे में भी सोचना पड़ेगा लेकिन वह भी तभी हो सकता है, जब आपका दिमाग बचा रहे।

आर्थिक गुलामी और शारीरिक गुलामी से बड़ी होती है - मानसिक गुलामी। और जिस दिन कोई समाज कोई राष्ट्र मानसिक रूप से गुलाम बन जाता है, उसकी मुक्ति का कोई रास्ता नहीं बचता। सारे दरवाजे बन्द होने के बावजूद अगर एक दिमाग तय कर लेता है कि उसे आजादी से जीना है तो आंधी-तूफान भी उसका रुख नहीं बदल सकता। एक दिमाग में, एक इंसान में, आंधी और तूफान के रुख को बदलने की क्षमता है इसलिए वैकल्पिक मीडिया की संरचना के लिए दिमाग का आजाद होना जरूरी है।

इसलिए आप सबसे निवेदन करना चाहता हूँ कि लोकतंत्र में जनता की आवाज को न्याय और उसकी हक की लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए अपने

दिमाग को जरूर टटोलिएगा, कहीं आपका दिमाग भी गुलाम तो नहीं बन रहा है? दिमाग गुलाम बन जाएगा तो कोई रास्ता नहीं बचेगा। मीडिया गुलाम बन रहा है तो भी हम नया रास्ता बना सकते हैं, नए भारत के निर्माण की तरफ अग्रसर हो सकते हैं। और मुझे भरोसा है कि अब तक सभी लोगों के दिमाग को कोई गुलाम नहीं बना पाया और न बना पाएगा। इसलिए उम्मीद रखें, मीडिया के सारे तंत्र को ताण्डव करने दीजिए, यकीन मानिए इसी नृत्य के बीच से एक नई रागिनी निकलेगी, नया सूर्य निकलेगा, नया मीडिया भी बनेगा, नया हिंदुस्तान भी बनेगा, नया इंसान भी बनेगा।

❑❑❑

अध्याय
11

महात्मा गांधी, डॉ. अंबेडकर और शहीद भगत सिंह

दुनिया के इतिहास में उपनिवेशवादी सत्ता के खिलाफ लड़े गए संघर्षों में भारत का स्वतंत्रता संघर्ष एक अनूठा संघर्ष रहा है। इसके अनूठेपन की झलक अलग-अलग मोर्चों पर लड़ने वाले उन क्रान्तिकारियों में नजर आता है जो वैचारिक रूप से एक दूसरे से अलग होने के बावजूद भारत की आजादी और उसकी बेहतरी की लड़ाई लड़ रहे थे। ऐसे लोगों में सबसे अहम नाम महात्मा गांधी, डॉ. आंबेडकर और शहीद भगत सिंह का है। यूँ तो इन तीनों शख्सियतों की अपनी-अपनी विचाधाराएं, अपने-अपने तरीके और अपने-अपने संघर्ष थे। लेकिन जिस एकता के सूत्र में ये तीनों आपस में बंधते थे वह था भारत की आजादी और एक मजबूत देश व देशवासियों का निर्माण। आज जब भी इन तीनों शख्सियतों पर बात होती है तो इन्हें एक दूसरे के मुखालिफ के तौर पर पेश किया जाता है और बड़ी चालाकी के साथ उन तथ्यों को छुपा लिया जाता है जो इन्हें एक दूसरे के साथ जोड़ते हैं। हमारी कोशिश है कि हम उन छुपा लिए जाने वाले तथ्यों की तरफ लोगों की नजर ले जा सकें जो हमारी स्वतंत्रता संघर्ष की विरासत को सम्पूर्णता से समझने में मदद करता है।

सबसे पहले बात करते हैं महात्मा गाँधी और शहीद भगत सिंह की। इन दोनों के बीच मतभेद के दो मुख्य बिंदु थे। मतभेद का पहला बिंदु आजादी की लड़ाई लड़ने के तरीके को लेकर था। महात्मा गाँधी अहिंसात्मक तरीके से अंग्रेजों के विरोध के पक्षधर थे। उनकी इस लड़ाई में भूख हड़ताल करना, शांतिप्रिय तरीके से जुलूस निकालना और रचनात्मक कार्यों से लोगों को जोड़ना प्रमुख हथियार थे। जबकि शहीद भगत सिंह और उनके क्रान्तिकारी साथियों का मानना था कि बहरों को सुनाने के लिए धमाकों की जरूरत पड़ती है। उनका मानना था कि

हिंसात्मक क्रान्तिकारी तरीके से लड़ाई लड़ कर अंग्रेजों को इस देश से भगाया जा सकता है। मतभेद का दूसरा बिंदु अंग्रेजों से स्वराज्य की मांग को लेकर था। महात्मा गाँधी और कांग्रेस जब अंग्रेजों से डोमिनियन स्टेटस् की मांग कर रहे थे तब शहीद भगत सिंह और उनके साथियों ने टोटल इंडिपेंडेंस यानी पूर्ण स्वराज्य की मांग की। मतभेद का तीसरा बिंदु उनके समर्थकों के बीच तब उभरकर सामने आया जब शहीद भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी हो गई। लोगों का कहना था कि अगर महात्मा गाँधी चाहते तो यह फांसी टाली जा सकती थी।

मतभेद के पहले बिंदु पर आते हैं। हम सब इस बात को अच्छे से जानते हैं कि इंसान के विचारों में समय के साथ बदलाव होता है। यह बदलाव महात्मा गाँधी में होता है, शहीद भगत सिंह में होता है, डॉ. अंबेडकर में होता है बल्कि मैं ये कहूँ कि समय के साथ इस तरह के वैचारिक बदलाव हम सबमें होते हैं। जब शहीद भगत सिंह जेल में थे तब उन्होंने क्रान्तिकारियों की हिंसात्मक गतिविधियों पर सवाल खड़ा किया। अपने प्रसिद्ध लेख 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' में उन्होंने लिखा कि "अध्ययन की पुकार मेरे मन के गलियारों में गूंज रही थी – विरोधियों द्वारा रखे गए तर्कों का सामना करने योग्य बनने के लिए अध्ययन करो। अपने मत के समर्थन में तर्क देने के लिए सक्षम होने के वास्ते पढ़ो। मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। इससे मेरे पुराने विचार व विश्वास अद्भुत रूप से परिष्कृत हुए। हिंसात्मक तरीकों को अपनाने के रोमांस की जगह, जो हमारे पुराने साथियों में अत्यधिक व्याप्त था, गंभीर विचारों ने ले ली। यथार्थवाद हमारा आधार बना। हिंसा तभी न्यायोचित है जब किसी विकट आवश्यकता में उसका सहारा लिया जाए। अहिंसा सभी जनांदोलनों का अनिवार्य सिद्धांत होना चाहिए।" यह बात कि 'अहिंसा सभी जनांदोलनों का अनिवार्य सिद्धांत होना चाहिए' मूलतः महात्मा गाँधी की विचारधारा है, लेकिन यहाँ इस बात को शहीद भगत सिंह दुहरा रहे हैं। तमाम वैचारिक मतभेदों के बावजूद इस बिंदु पर शहीद भगत सिंह और महात्मा गाँधी दोनों एक समान नजर आते हैं, दोनों अहिंसावादी नजर आते हैं। इसलिए ये कहना कि महात्मा गाँधी अहिंसावादी और शहीद भगत सिंह हिंसावादी थे – यह अधूरी और गलत बात है। सच तो ये है कि वक्त के साथ शहीद भगत सिंह भी महात्मा गाँधी के अहिंसा के महत्त्व को समझने लगे थे।

इसी बिंदु से जुड़ा हुआ एक और तथ्य है। भूख हड़ताल महात्मा गाँधी की अहिंसात्मक लड़ाई का एक अहम हथियार था, जिसे क्रान्तिकारी धड़ा पसंद नहीं करता था लेकिन दिलचस्प बात यह है कि अपने अधिकारों को लेकर शहीद भगत सिंह और उनके साथियों ने जेल में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का सबसे लम्बा भूख हड़ताल किया। यह घटना हमें फिर से यह सोचने के लिए मजबूर करती है कि महात्मा गाँधी और शहीद भगत सिंह के लक्ष्य ही एक नहीं थे बल्कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई के तरीकों में भी पर्याप्त एका थी।

मतभेद का दूसरा बिंदु पूर्ण स्वराज्य और डोमिनियन स्टेटस् की मांग को लेकर है। शुरू में महात्मा गांधी और कांग्रेस अंग्रेजों से डोमिनियन स्टेटस् की मांग कर रहे थे जबकि शहीद भगत सिंह और उनके क्रान्तिकारी साथी पूर्ण स्वराज्य की मांग कर रहे थे। क्रान्तिकारियों की बात का असर कांग्रेस पर हुआ और 1929 के लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण स्वराज की मांग का प्रस्ताव पारित हुआ। महात्मा गाँधी जी ने दांडी में नमक का कानून तोड़कर पूर्ण स्वराज्य की मांग का समर्थन किया। यहाँ महात्मा गाँधी पर शहीद भगत सिंह और उनके क्रांतिकारी दोस्तों के प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता।

अब आते हैं समर्थकों के बीच फैले मतभेद के तीसरे बिंदु पर जिसमें कहा जाता है कि अगर महात्मा गाँधी ने कोशिश की होती तो शहीद भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी से बचाया जा सकता था। यह बात सरासर गलत है जिसका प्रमाण तत्कालीन वायसराय इरविन के नाम लिखी महात्मा गाँधी की वह चिट्ठी है जिसमें वे लिखते हैं कि शांति के हित में अंतिम अपील करना आवश्यक है। हालांकि आपने मुझे साफ -साफ बता दिया है कि शहीद भगत सिंह और अन्य दो लोगों की मौत की सजा में कोई भी रियायत की आशा न रखूं लेकिन डॉ. सप्रू कल मुझे मिले और उन्होंने बताया कि आप कोई रास्ता निकालने पर विचार कर रहे हैं। अगर फैसले पर थोड़ी भी विचार की गुंजाइश है तो आपसे प्रार्थना है कि सजा को वापस लिया जाए या विचार करने तक स्थगित कर दिया जाए। अगर मुझे आने की आवश्कता होगी तो आऊंगा। याद रखिए कि दया कभी निष्फल नहीं जाती। शहीद भगत सिंह को बचाने के लिए

महात्मा गाँधी द्वारा की गई यह कोशिश बेशक सफल नहीं हुई लेकिन उन्हें एक दूसरे के करीब लाने में इस कोशिश की बहुत बड़ी अहमियत है।

अब बात करते हैं महात्मा गाँधी और डॉ. अंबेडकर की। महात्मा गाँधी और डॉ. अंबेडकर के बीच का मतभेद जाति और उसकी समझदारी को लेकर था। एक समय ऐसा था जब महात्मा गाँधी सोचते थे कि वर्ण व्यवस्था हिन्दू धर्म की रीढ़ है और वर्ण को खत्म करने का मतलब है हिन्दू धर्म को ही खत्म कर देना। धीरे-धीरे महात्मा गाँधी के विचार में परिवर्तन हुआ और वे छूआछूत व जातिगत भेदभाव के घोर विरोधी बन गए। छूआछूत और जातिगत भेदभाव का विरोध उनके रचनात्मक कार्यों का भी अहम हिस्सा था। वे अस्पृश्यों को हरिजन कहते थे और उच्च जाति के लोगों से इन हरिजनों के प्रति मानवीय व्यवहार की अपील करते थे।

जाति को लेकर डॉ. अंबेडकर की समझदारी महात्मा गाँधी से अलग थी वो जाति व्यवस्था को छूआछूत की जड़ मानते थे। डॉ. अंबेडकर के अनुसार जाति व्यवस्था को खत्म किये बगैर छूआछूत और जातिगत भेदभाव खत्म नहीं किये जा सकते। अपनी किताब 'अन्निहिलेशन ऑफ कास्ट' में वे अंतरजातीय विवाह की वकालत करते हैं साथ ही हिन्दू धर्मग्रंथों के उन हिस्सों को निकालने की बात करते हैं जिसमें जाति व्यवस्था को मजबूत करने वाली बातें लिखी गई हैं। एक समय था जब महात्मा गांधी जी को जाति उन्मूलन के इन उपायों से गहरी आपत्ति थी।

महात्मा गाँधी जी ने एक जगह लिखा है कि अगर दो अलग-अलग समय में दिए गए उनके विचारों में कोई अंतर लगे तो बाद के विचार को प्रमाणिक माना जाए। दरसल महात्मा गाँधी जी नए ज्ञान, नए विचारों को ग्रहण करने में काफी सहज थे। यही वजह है कि अपने शुरुआती दिनों में अंतर्जातीय विवाह का विरोध करने वाले महात्मा गाँधी ने बाद के दिनों में ऐलान किया कि 'वे ऐसी किसी शादी में शरीक नहीं होंगे जिनमें लड़का या लड़की में से कोई एक दलित न हो।' यही नहीं वे ऐसी शादियों का आयोजन अपने आश्रम में भी करवाते थे। 7 जुलाई, 1946 के 'हरिजन' में वे लिखते हैं, "यदि मेरा बस चले तो मैं अपने प्रभाव में आने वाली सभी सवर्ण लड़कियों को चरित्रवान हरिजन युवकों को पति के रूप में चुनने की सलाह दूं।" यहाँ महात्मा गाँधी, डॉ. अंबेडकर के साथ खड़े हैं, जाति उन्मूलन के उनके उपायों को वैधता प्रदान करते हुए।

वैचारिक मतभेदों के बावजूद डॉ. अंबेडकर स्वतंत्रता संघर्ष में महात्मा गाँधी की मौजूदगी को बेहद अहम मानते थे। महात्मा गाँधी भी डॉ. अंबेडकर के ज्ञान और देश को बेहतर बनाने के उनके जज्बे का बेहद सम्मान किया करते थे। यही वजह है कि उन्होंने जवाहर लाल नेहरु जी से डॉ. अंबेडकर को संविधान सभा में शामिल कराने और भारत का प्रथम कानून मंत्री बनाने की वकालत की।

अब बात करते हैं डॉ. अंबेडकर और शहीद भगत सिंह के बीच के सम्बन्धों पर। शहीद भगत सिंह क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित थे और डॉ. अंबेडकर की आस्था लोकतंत्र, संविधान और संसदीय प्रणाली में थी। वैचारिक मतभेद के बावजूद दोनों के विचारों में समानता के कई बिंदु नजर आते हैं। डॉ. अंबेडकर और शहीद भगत सिंह दोनों ने इस देश के गरीब-मजलूम और शोषितों के पक्ष में अपनी आवाज को बुलंद किया। डॉ. अंबेडकर जाति व्यवस्था और छूआछूत को इस देश का सबसे बड़ा कलंक मानते थे। इस मसले पर शहीद भगत सिंह की समझदारी भी डॉ. अंबेडकर से अलग नहीं थी। अपने लेख 'अछूत समस्या' में शहीद भगत सिंह लिखते हैं कि "सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इन्सान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य-विभाजन से। क्योंकि एक आदमी गरीब मेहतर के घर पैदा हो गया है, इसलिए जीवन भर मैला ही साफ करेगा और दुनिया में किसी तरह के विकास का काम पाने का उसे कोई हक नहीं है, ये बातें फिजूल हैं। इस तरह हमारे पूर्वज आर्यों ने इनके साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया तथा उन्हें नीच कह कर दुत्कार दिया एवं निम्नकोटि के कार्य करवाने लगे। साथ ही यह भी चिन्ता हुई कि कहीं ये विद्रोह न कर दें, तब पुनर्जन्म के दर्शन का प्रचार कर दिया कि यह तुम्हारे पूर्व जन्म के पापों का फल है। अब क्या हो सकता है? चुपचाप दिन गुजारो ! इस तरह उन्हें धैर्य का उपदेश देकर वे लोग उन्हें लम्बे समय तक के लिए शान्त करा गए। लेकिन उन्होंने बड़ा पाप किया। मानव के भीतर की मानवीयता को समाप्त कर दिया। आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन की भावनाओं को समाप्त कर दिया। बहुत दमन और अन्याय किया गया। आज सबके प्रायश्चित का वक्त है।" जाति के सवाल पर इस तरह की प्रोग्रेसिव सोच शहीद भगत सिंह और डॉ. अंबेडकर जैसे चंद लोगों में ही देखने को मिलती है।

शहीद भगत सिंह और डॉ. अंबेडकर सिर्फ आजादी मिलने तक ही नहीं सोचते थे बल्कि उन्हें इस बात की भी चिंता थी कि कहीं ऐसा न हो कि आजाद हिन्दुस्तान में भी वही जुल्मों-सितम, वही भेदभाव हो जो अंग्रेजों की गुलामी में हो रहा है। शहीद भगत सिंह के शब्दों में ''मैं ऐसा भारत नहीं चाहता जिसमें गोरे अंग्रेजों का स्थान हमारे देश के काले अंग्रेज ले लें।" यहाँ शहीद भगत सिंह की चिंता सत्ता परिवर्तन के साथ-साथ नई व्यवस्था के निर्माण में भी है। कुछ ऐसी ही चिंता संविधान सभा की आखिरी बैठक में डॉ. अंबेडकर ने भी जाहिर की थी, उन्होंने कहा था कि "26 जनवरी 1950 को हम विरोधाभास के जीवन में प्रवेश कर रहे हैं एक तरफ राजनीति में समानता होगी, वहीं दूसरी तरफ सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में असमानता बरकरार होगी, राजनीति में हम एक व्यक्ति - एक वोट और एक वोट - एक मूल्य के सिद्धांत को प्रतिपादित करेंगे। जबकि सामाजिक और आर्थिक जीवन में हमने प्रत्येक व्ब्यक्ति के एक समान महत्व को स्वीकार नहीं किया है। हम कब तक ऐसा विरोधाभास जारी रखेंगे? कब तक हम अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में समानता को अस्वीकार करते रहेंगे? यदि हम लंबे समय तक इसे अस्वीकार करते रहे तो अपने राजनीतिक लोकतंत्र को ही कमजोर करते जाएंगे। हमको शीघ्र इस विरोधाभास को दूर करना होगा अन्यथा असमानता के शिकार लोग उठ खड़े होंगे और राजनीतिक लोकतंत्र के ढांचे को गिरा देंगे।"

महात्मा गाँधी, डॉ. अंबेडकर और शहीद भगत सिंह की चिंता व्यवस्था परिवर्तन के साथ-साथ एक बेहतर वैकल्पिक व्यवस्था के निर्माण की भी है। महात्मा गाँधी द्वारा दिखाए गए सत्य, अहिंसा, प्रेम और भाईचारे के रास्ते पर चलकर इस मुल्क को एक खूबसूरत मुल्क बनाया जा सकता है। डॉ. अंबेडकर के शब्दों में कहूँ तो सामाजिक और आर्थिक समानता के बगैर सिर्फ राजनैतिक समानता से यह देश आगे नहीं बढ़ने वाला। और आखिर में शहीद भगत सिंह के शब्दों में कहें तो बेशक गोरे अंग्रेजों से यह देश आजाद हो गया है लेकिन काले अंग्रेजों से इस देश को आजाद होना अभी बाकी है।

अंत में बस यही कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी, डॉ. अंबेडकर और शहीद भगत सिंह के विचारों में बेशक एक दूसरे से मतभेद था लेकिन तीनों ने

देश को आजाद कराने में और एक बेहतर भारत बनने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा गाँधी, डॉ. अंबेडकर और शहीद भगत सिंह इन तीनों का सपना एक मजबूत और खूबसूरत हिन्दुस्तान बनाने का था, जिसमें सभी अमन-चैन और मोहब्बत के साथ जी सकें, जिसमें सबको समान अधिकार हो, जिसमें इंसान के द्वारा इंसान का शोषण न हो सके।

आज भी कई लोग महात्मा गाँधी, डॉ. अंबेडकर और शहीद भगत सिंह के अलग-अलग समय के विचारों, वक्तव्यों और लेखों को अलग-अलग समय में, उनके व्यापक सन्दर्भों से काटकर ऐसे प्रस्तुत करते हैं जैसे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजों से आजादी तथा नए भारत के निर्माण की लड़ाई न चल करके इनके बीच की ही लड़ाई चल रही थी। जबकि यह सच नहीं है। भारत में अंग्रेजी राज के दौरान दो धाराएं थीं, भारतीयों की एक धारा अंग्रेजों की चाटुकारिता, वाहवाही और प्रशंसा करने के साथ-साथ पुराने सामंती, जाति व सांप्रदायिक विचारों का संरक्षण करना चाहती थी। उनमें राजा भी थे, नवाब भी थे, मुस्लिम लीग भी थी, हिन्दू महासभा भी थी और आर.एस.एस. भी थी। दूसरी तरफ एक धारा थी जो आधुनिक विचारों के आधार पर समता, स्वतंत्रता और बंधुता के आधार पर एक नए आजाद भारत का निर्माण करना चाहती थी जिसमें महात्मा गाँधी भी थे, डॉ. अंबेडकर भी थे और शहीद भगत सिंह भी थे।

❑❑❑

अध्याय
12

राष्ट्र-निर्माण में युवाओं की भागीदारी

राष्ट्र-निर्माण में युवाओं की भागीदारी पर जब हम चर्चा करते हैं तो उसमें दो मुख्य विषय आते हैं - पहला राष्ट्र-निर्माण और दूसरा युवा। युवा अनंतकाल से हैं। राष्ट्र-निर्माण की बात राष्ट्र के प्रादुर्भाव के बाद से पैदा हुई है।

राष्ट्र-निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत अलग-अलग धर्म, जाति, लिंग, प्रान्त, क्षेत्र, भाषा, मूल, इतिहास और संस्कृति से ताल्लुक रखने वाले लोग सामूहिक प्रयास कर देश को तरक्की की तरफ ले जाते हैं। आपसी पुरानी लड़ाइयाँ, मनमुटाव, नाइंसाफी माफ करके मोहब्बत के साथ एक दूसरे से गले मिलते हैं। एक दूसरे के प्रतीकों, मूल्यों, रीति-रिवाजों का मान सम्मान करते हैं। देश के संविधान के मूल्यों की रक्षा करते हैं, कानूनी व्यवस्था का सम्मान करते हैं और साथ-साथ बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था के लिए दिल-ओ-जान से काम करते हैं।

जिस तरह वायु को सीमाओं में नहीं बाँध सकते ठीक उसी तरह युवाओं को भी सीमाओं में नहीं बाँध सकते। वायु की पहचान उसकी गति से होती है न की उसके ठहराव से, ठीक उसी तरह युवाओं की पहचान उनमें विद्यमान ऊर्जा और गति से होती है। इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों तरफ लगातार चक्कर लगाता रहता है, इलेक्ट्रॉन की इसी गति की वजह से इलेक्ट्रॉन का अस्तित्व तो बचता ही है साथ-साथ परमाणु का अस्तित्व भी बचा रहता है। परमाणु का अस्तित्व बचता है तो अणु का अस्तित्व भी। और इस तरह हर एक चीज का अस्तित्व बचा रहता है। पूरे ब्रह्माण्ड का अस्तित्व एक इलेक्ट्रॉन की गति की वजह से है जिसे हम नग्न आँखों से नहीं देख सकते। सोचो अगर पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाना बंद कर दे तो न दिन होगा न रात। अगर पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाना बंद कर दे तो पृथ्वी नष्ट हो जाएगी। अगर सूर्य आकाश गंगा का चक्कर लगाना बंद कर

दे तो सूर्य नष्ट हो जायेगा। और इसी तरह एक दिन पूरा ब्रह्माण्ड नष्ट हो जायेगा। इस ब्रह्माण्ड के अस्तित्व की एक मुख्य वजह है, वो है गति। युवाओं के अन्दर सबसे अधिक ऊर्जा होती है, सबसे अधिक गति होती है। अगर युवाओं के अन्दर ठहराव आ जाये तो युवा तो बर्बाद होंगे ही बल्कि उसके साथ-साथ राष्ट्र का निर्माण भी रुक जायेगा। युवाओं को हर क्षेत्र में हिस्सेदारी लेनी होगी। अगर ऐसा नहीं करते तो वे ऐसी नदी की तरह हो जायेंगे, जिसका कोई प्रवाह नहीं है। जिसमें अनचाहे शैवाल, मेंढक और भयंकर कीड़े जमा हो जायेंगे।

युवा एक बीज की तरह है। अगर बीज की गुणवत्ता अच्छी है तो उससे अच्छी गुणवत्ता वाला पेड़ बनेगा। उस पेड़ पर अच्छी गुणवत्ता के फल लगेंगे। और अगर बीज की गुणवत्ता अच्छी नहीं है तो उससे बनने वाले पेड़ और पेड़ पर लगने वाले फल की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं होगी। युवा राष्ट्र के उत्तराधिकारी होते हैं, युवाओं को नैतिक रूप से मजबूत बनना होगा, अध्यात्मिक रूप से मजबूत बनना होगा, सामाजिक रूप से मजबूत बनना होगा, आर्थिक रूप से मजबूत बनना होगा, राजनैतिक रूप से मजबूत बनना होगा। तब जाकर राष्ट्र नैतिक, अध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से मजबूत होगा।

युवा एक सेतु की तरह है जो पूर्व पीढ़ी से सीखता है, सुझाव लेता है और आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन करता है। युवाओं की कोई धार्मिक सीमा नहीं होती, कोई जातीय सीमा नहीं होती, कोई लैंगिक सीमा नहीं होती, कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती, कोई प्रांतीय सीमा नहीं होती, कोई क्षेत्रीय सीमा नहीं होती, कोई भाषायी सीमा नहीं होती। जब दिल्ली के किसी विश्वविद्यालय के किसी छात्र के साथ नाइंसाफी होती है तो पूरे देश के छात्र उसे इन्साफ दिलाने के लिए सड़क पर उतर जाते हैं, वे ये नहीं देखते की पीड़ित छात्र किस धर्म, किस जाति, किस लिंग, किस प्रान्त, किस क्षेत्र या फिर किस भाषा से ताल्लुक रखता है। और जब हैदराबाद के किसी विश्वविद्यालय के किसी छात्र के साथ नाइंसाफी होती है तो ठीक इसी तरह पूरे देश के छात्र उसे इन्साफ दिलाने की लड़ाई लड़ते हैं। युवा अलग-अलग धर्मों, अलग-अलग जातियों, अलग-अलग लिंगों, अलग-अलग प्रान्तों, अलग-अलग क्षेत्रों, अलग-अलग भाषाओं से ताल्लुक रखने वाले लोगों को मिलाने के लिए सेतु का काम करते हैं।

जब हम राष्ट्र-निर्माण की बात करते हैं तो सबसे पहला ख्याल युवाओं का आता है। लेकिन आज की तारीख में युवाओं के भीतर जो ऊर्जा बसती है उसमें ठहराव आ गया है, बिखराव आ गया है। वह सकारात्मक और नकारात्मक दो रूपों में बंट गयी है। आज युवाओं के दिमाग में नकारात्मक सोच को भरा जा रहा है और जब तक युवाओं की सोच में नकारात्मकता रहती है, निर्माण का कार्य नहीं हो सकता। निर्माण कभी भी नकारात्मक ऊर्जा के साथ नहीं हो सकता। निर्माण के लिए सकारात्मक ऊर्जा जरूरी है और मैं यह बात मानता हूँ। युवा वह है जिसकी सोच में सड़ी-गली व्यवस्था का विध्वंस करने की ताकत हो और विध्वंस करने के बाद नवनिर्माण करने की ताकत भी हो।

जब स्वामी विवेकानंद पैदा हुए उस समय हमारे युवाओं की सोच रूढ़िवाद में इतना अधिक जकड़ी हुई थी कि उस व्यवस्था को तोड़े बिना नए भारत का रास्ता नहीं बन सकता था। लोग अपनी जातीय परिधियों में घिरे हुए थे और धीरे-धीरे राष्ट्र का चिंतन और राष्ट्र की सोच विलुप्त हो गई थी। रामकृष्ण परमहंस ने हिंदू धर्म को गहराई में जाकर देखा। ऐसे ही उन्होंने दुनिया के सभी धर्मों की गहराई में जाकर देखा और पाया कि सभी धर्मों में परम तत्त्व एक ही है, वह मानवता का परम तत्त्व है और वह गहराई में जाए बिना नहीं मिल सकता। रामकृष्ण परमहंस ने स्वामी विवेकानंद के अंदर ज्ञान की ज्योति को प्रवाहित किया। यही ऊर्जा स्वामी विवेकानंद के अंदर आती है और स्वामी विवेकानंद उसके द्वारा देश के बिखरे हुए चिंतन को जोड़ने और रूढ़ियों को तोड़ने की हिम्मत करते हैं। शिकागो की धर्म संसद में स्वामी विवेकानंद अकेले नहीं थे, भारत के अलावा विश्व के कई विद्वान और पंडित गए हुए थे। लेकिन स्वामी विवेकानंद को यह बात समझ में आ गई थी कि धर्म की रूढ़ियों को जब तक तोड़ोगे नहीं, तब तक नए भारत के निर्माण का रास्ता नहीं बन सकता। स्वामी विवेकानंद ज्ञान का आह्वान करते हैं और कहते है कि "मुझे अपने देश में और विशेष रूप से अपने देश के युवाओं में विश्वास है। सारी शक्तियां तुम्हारे भीतर हैं। आप कुछ भी और सब कुछ कर सकते हैं। उस पर विश्वास करो, यह मत मानो कि तुम कमजोर हो। खड़े हो जाओ और अपने भीतर की दिव्यता व्यक्त करो। इसलिए, उठो, जागो, और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य पूरा न हो जाए।

हमारा देश अंग्रेजों की गुलामी के चंगुल में था। युवा घर से बाहर निकले और उन्होंने गुलामी की बेड़ियों को तोड़ दिया। भगत सिंह जेल के अंदर से अपनी डायरी में लिखते हैं कि युवाओं को व्यवस्था परिवर्तन में हिस्सेदारी लेनी चाहिए। मैं आपको बताना चाहता हूं कि हमारे यहाँ दो परंपरा रही है - एक यह कि जो व्यवस्था चल रही है उसमें कुछ अच्छा कर दो, तुम्हारी यही जिम्मेदारी है। दूसरी यह परंपरा चलती रही है कि जो व्यवस्था सड़-गल गई है, जो आगे देश को विनाश की तरफ लेकर जाने वाली है, अंधेरी गली में लेकर जाने वाली है, उसे तोड़ो। जब तक पुरानी सड़ी-गली व्यवस्था को तोड़ोगे नहीं, राष्ट्र का विकास और नवनिर्माण संभव नहीं है। भगत सिंह इसी बात का आह्वान करते हैं।

विवेकानंद तमाम रूढ़ियों को तोड़कर नवनिर्माण की तरफ बढ़ने का नाम है। भगत सिंह भारत की तमाम रूढ़ियों, गुलामी की तमाम संस्थाओं, बाधाओं को तोड़कर नए भारत में आगे बढ़ने का नाम है। इसलिए मैं आप से कहना चाहता हूँ कि अगर आपको देश से सच्चा प्यार है तो आपको तमाम तरह की बाधाएं तोड़कर भारत के नवनिर्माण करने की जिम्मेदारी निभानी होगी।

अब तक का जो दुनिया का इतिहास रहा है, उसके अनुसार निर्माण करने के लिए आप को नींव खोदनी पड़ती है। निर्माण करने के लिए वर्तमान की गैरजरूरी चीजों का विध्वंस करना पड़ता है। यह काम युवा ही कर सकता है और अगर आप अब तक के मानव सभ्यता के इतिहास को देखने की कोशिश करते हैं तो यह मिलेगा कि युवाओं ने यह काम किया है। दुनिया में फ्रांस, रूस, चीन, अमेरिका आदि में क्रांतियों को करने वाले हजारों युवा ही थे। इतिहास में इन्हीं का नाम मिलता है। दुनिया के तमाम गुलाम देशों में आजादी की लड़ाई लड़ने में सबसे अधिक योगदान युवाओं का रहा है।

आम तौर पर जब इतिहास के पन्नों पर मैं दृष्टि डालता हूँ तो पता चलता है कि बार-बार युवाओं ने बंधन की बेड़ियों को तोड़ा है। धर्म, जाति, लिंग, प्रान्त, क्षेत्र, भाषा, मूल, इतिहास और संस्कृति आदि की आड़ में जितनी रूढ़ियाँ पैदा हुई हैं, उन्हें तोड़ने का कार्य युवाओं ने किया है। इसलिए किया है कि युवा के अंदर एक ऐसी ऊर्जा बसती है जो तपस्या और बलिदान की क्षमता रखती है।

यह उसके यौवन, सोच और साहस का परिणाम है। लेकिन मैं समझता हूँ कि आज भारत के युवाओं को दोहरी जिम्मेदारी अपनानी है। पुरानी व्यवस्था को तोड़ना और ठीक उसी समय नई व्यवस्था का निर्माण करने का काम युवाओं को करना है। युवा विध्वंस को प्राथमिकता देता रहा है लेकिन निर्माण को भी प्राथमिकता उसे देनी पड़ेगी। क्योंकि विध्वंस के बाद यदि नया निर्माण नहीं होता तो पुराने शातिर लोग अपने लिए रास्ता तलाश लेते हैं और युवाओं की ऊर्जा व्यर्थ जाती है। भारत में हमने देखा है कि लंबी कुर्बानी के बाद देश आजाद हो गया। अपनी कुर्बानी के दम पर भारत के युवाओं ने अंग्रेजी गुलामी के बंधन को तोड़ दिया। लेकिन नए भारत के निर्माण का सपना अधूरा रह गया। ऐसे ही 1974 में शुरू हुए युवा आन्दोलन ने आगे बढ़कर 1975 के आपात काल के ताने बाने को ध्वस्त कर दिया। लेकिन नवनिर्माण का रास्ता अधूरा रह गया। फिर वही पुरानी व्यवस्था कायम हो गई। 1947 में आजादी मिलने के बाद भी अंग्रेजों की व्यवस्था जारी रही और 1975 के आपात काल के ताने बाने को ध्वस्त करने के बाद भी वही पुरानी व्यवस्था जारी रही।

आज हम अपने देश के विकास में एक ठहराव महसूस करते हैं। ऐसे ही भारत में पहले कई ठहराव आए हैं। आजादी के बाद जब इंदिरा गांधी की सरकार में 1975 में आपातकाल लगा तो एक ठहराव पैदा हो गया। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में युवाओं ने आपातकाल की उन बेड़ियों को तोड़ दिया। लेकिन फिर से दुसरे पुराने शातिर स्वार्थी लोग सत्ता पर काबिज हो गए। आज फिर से हमारे देश में वही प्रयोग किया जा रहा है। अन्ना आंदोलन के बाद एक बार फिर से वही कोशिश शुरू हुई थी। देश के युवाओं ने बारिश, तूफान, सर्दी, गर्मी, धूप-छांव नहीं देखा और अपनी मेहनत से आंदोलन खड़ा किया। कोशिश तो बदलाव की थी, लेकिन फिर से देश में वही पुरानी व्यवस्था कायम हो गई। यह जो पत्ता फेरी का काम चलता रहा है- परिवर्तन की बयार के बाद फिर वही पुरानी व्यवस्था - यह अब नहीं होगा। एक बार फिर से इस देश में नया प्रयोग शुरू हुआ है। सड़ी-गली व्यवस्था और भ्रष्ट तंत्र को बदलने के लिए हमने लड़ाई शुरू कर दी है। और ये लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तब शहीद भगत सिंह के सपनों का भारत नहीं बन जाता।

मैं आप से यह कहना चाहता हूँ कि देश में जो व्यवस्था चल रही है, उसमें पार्टियां बदलती रहीं, चुनाव कई बार हो गए, लेकिन यह व्यवस्था नहीं बदली। इस देश की मानसिकता को लेकर एक व्यवस्था अंग्रेजों ने पैदा की - इसे गुलाम बनाने के लिए। यहाँ के लोगों का शोषण करने के लिए। आजादी के इतने साल बाद भी हम आज तक उस व्यवस्था को बदल नहीं पाए हैं। सरकारें बदल गई हैं, पार्टियां बदल गई हैं, सत्ता बदल गई हैं, नेता बदल गए हैं लेकिन व्यवस्था वही जारी है जो अंग्रेजों ने देश को गुलाम बनाने के लिए बनाई थी। आज युवाओं के सामने सबसे बड़ी जिम्मेदारी है - अपने अंदर हिम्मत पैदा करो। पुरानी व्यवस्था को तोड़ो और नई व्यवस्था स्थापित करो, तब नवनिर्माण होगा। आज भारत में नवनिर्माण का मतलब यही है कि जो परंपरागत व्यवस्था है, उसे तोड़ा जाए और नई ऊर्जा की व्यवस्था को जोड़ा जाए। मैं युवाओं से निवेदन करना चाहता हूँ कि इसके लिए अपने अंदर की व्यवस्था को भी तोड़ना पड़ेगा।

युवाओं को बदलाव का अग्रदूत इसलिए माना जाता है, क्योंकि वह त्याग करता है। हर व्यक्ति को अपनी जिंदगी से मोह पैदा हो जाता है। जो हम धारण कर लेते हैं, उसे छोड़ना आसान नहीं होता लेकिन युवा छोड़ देता है क्योंकि उसे मोह कम होता है। बुजुर्ग भी छोड़ सकता है, यदि उसे मोह कम हो तो। क्योंकि बदलाव के लिए त्याग चाहिए और जब मोह पैदा हो जाता है तो त्याग करना मुश्किल होता है। युवाओं में मोह कम होता है। क्योंकि उनके अंदर त्याग करने की क्षमता होती है। उम्र के साथ लेने की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है। इसलिए बदलाव के लिए यह देश ही नहीं, पूरी दुनिया युवाओं को अग्रदूत मानता रहा है।

आज पूरे देश में एक नकारात्मक ऊर्जा हमारे मन मस्तिष्क में बैठी हुई है, हम जिस समाज में पैदा हुए हैं, उस समाज के अंदर बैठी हुई है। जिस धर्म में पैदा हुए हैं, उस धर्म के अंदर बैठी हुई है। जिस राष्ट्र में पैदा हुए हैं, उस राष्ट्र के अंदर बैठी हुई है। अपने आत्म चिंतन को जगाने की हिम्मत करनी पड़ेगी। स्वामी विवेकानंद इस देश के युवाओं से आह्वान करते हुए कहते हैं कि अपने आत्म चिंतन को जगाओ और भगत सिंह आह्वान करते हैं कि यह जो सड़ी-गली व्यवस्था है, उसे चकनाचूर करने की हिम्मत दिखाओ। आत्म चिंतन से ऊर्जा पैदा होगी और उसी ऊर्जा से देश की उन्नति में बाधा डालने वाली सड़ी - गली

व्यवस्था को आप खत्म कर सकते हैं। इस कुदरत ने आपको निर्माण करने की तमाम शक्तियाँ दी हैं।

मैं बार-बार कहता हूँ कि भारत के अन्दर जितनी नदियां बहती हैं, दुनिया के कम देशों में इतनी नदियां बहती हैं। भारत के पास जितनी उपजाऊ जमीन है, दुनिया के कम देशों में इतनी उपजाऊ जमीन है। भारत के पास जितनी प्राकृतिक संपदा है, दुनिया के कम देशों में इतनी प्राकृतिक संपदा है। भारत के पास जितनी ऋतुएं हैं, दुनिया के कम देशों में इतनी ऋतुएं हैं। भारत में जितने मेहनती लोग हैं, उतने दुनिया के कम देशों में हैं। भारत में जितनी युवा शक्ति है, दुनिया के कम देशों में हैं। आज भारत के बेटे-बेटियां दुनिया के सभी देशों में जाकर पसीना बहाते हैं तब वहाँ की अर्थव्यवस्था चलती है, वहाँ का निर्माण चलता है। कुदरत ने भारत के लोगों को जितना दिमाग दिया है, दुनिया के कम देशों के पास है। आज दुनिया के अधिकतर देशों की तरक्की में भारत के बेटे-बेटियों का अहम योगदान है। अपने पास सब कुछ है। लेकिन इतना मैं कहना चाहता हूँ कि परंपरागत रूप से जितनी नकारात्मकता हमारे अंदर पैदा हुई, उसके प्रचारक और उसके संवाहक तो आज हैं लेकिन बुद्ध से लेकर कबीर, विवेकानंद और भगत सिंह तक जितनी सकारात्मक ऊर्जा पैदा हुई, उसके प्रचारक और संवाहक कम हो गए हैं। ऐसे में आप अपनी आत्मशक्ति को जगाओगे तो भारत के जागने का रास्ता बनेगा। अंग्रेजी व्यवस्था को तोड़ोगे तो भारत के निर्माण का नया रास्ता बनेगा। भगत सिंह कल भी जिंदा थे, आज भी हैं और कल भी रहेंगे। वह कहते थे "हमारी यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक कि एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का शोषण और एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण बंद नहीं हो जाता। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह शोषण करने वाला गोरा अंग्रेज है या काला हिंदुस्तानी। "

युवा सपने देखता है और उन्हें पूरा करने के लिए नई-नई खोज करता है। युवाओं को सही प्रशिक्षण देने की जरुरत है। उनमें क्षमता और योग्यता को और विकसित करने की जरुरत है। जब-जब भारतीय युवाओं को अपनी योग्यता और क्षमता दिखाने का अवसर मिला है तो उन्होंने देश का नाम दुनिया में रौशन किया। जब स्वामी विवेकानन्द को शिकागो में आयोजित धर्म संसद में बात रखने का

अवसर दिया जाता है तो देश-दुनिया अध्यात्म की गहराई देखती है। जब सानिया मिर्जा को टेनिस खेल जगत में अवसर दिया जाता है तो देश में टेनिस खेल को नई पहचान मिलती है। जब कल्पना चावला को अवसर दिया जाता है तो वो अंतरिक्ष की नई ऊँचाइयाँ छूती हैं। जब श्रीनिवास रामानुजन को असवर दिया जाता है तो दुनिया को गणित के नए-नए अनगिनत समीकरण मिलते हैं। भारत के बेटे-बेटियों ने सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में भी बड़ी-बड़ी अन्तराष्ट्रीय कंपनियों के अहम पदों पर रहकर बाखूबी जिम्मेदारी निभाई है। युवाओं ने ओलंपिक गेम्स में देश को स्वर्ण, रजत एवं कांस्य पदक दिलाये हैं। सिनेमा, संगीत, कला, लेखन, उद्योग, तकनीक, विज्ञान, चिकित्सा, वाणिज्य, खेल, कृषि, अध्यात्म एवं सामाजिक सुधार हर एक क्षेत्र में युवाओं ने अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है।

आज केवल भारत नहीं, पूरी दुनिया के अंदर एक नकारात्मकता का दौर है। मैं जिम्मेदारी के साथ कहता हूँ कि भारत के युवाओं को खड़ा होना पड़ेगा। अपनी युवा सोच के साथ खड़ा होना पड़ेगा। अपने अंदर की नकारात्मकता से लड़ना पड़ेगा। अपने अंदर की नकारात्मकता से लड़कर आप जिस दिन विजय पाएंगे, आपके चेहरे पर चमक अलग होगी। आपका आत्मविश्वास अलग होगा। आपकी ऊर्जा अलग होगी और वह सकारात्मक ऊर्जा आपके अंदर देश के लिए एक तरंग पैदा करेगी। उस तरंग से एक राष्ट्रीय ऊर्जा पैदा होगी जिसमें वर्तमान की सड़ी-गली व्यवस्था को तोड़ने की भी क्षमता होगी और नए सृजन की भी क्षमता होगी। जब तक युवाओं के मन में विध्वंस करने की शक्ति और सृजन करने की नव ऊर्जा नहीं पैदा होगी, तब तक देश आगे नहीं बढ़ेगा। विध्वंस और सृजन, दोनों दायित्वों को युवाओं को अपने कंधे पर लेना पड़ेगा। मैं मानता हूँ कि भारत के उदय का रास्ता यहीं से खुलेगा। दुनिया में जिस मानवता के लिए भारत ने बहुत पहले आवाज उठाई थी - 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःख भागभवेत्।' शायद भारत की उस परिकल्पना को हम साकार कर पाएंगे। मुझे लगता है कि नई ऊर्जा और नई सोच के साथ अपने देश के निर्माण में युवाओं की भागीदारी सबसे जरूरी है। मेरा विश्वास है कि सही ऊर्जा को यदि सही दिशा में लगाया जाए तो नवनिर्माण का रास्ता खुलेगा, भारत के निर्माण का रास्ता खुलेगा, नई दुनिया और नई मानवता का रास्ता खुलेगा।

❑❑❑

मिशनः देश की बात

आज हम सब लोगों को उन तमाम सवालों के बारे में सोचने की जरूरत है जो आजादी के इतने सालों बाद भी अनुत्तरित पड़े हैं, जिसके जवाब के लिए हमारे पुरखों ने अपनी कुर्बानी दी। रोटी तो हम तब भी खा लेते थे, जब हम गुलाम थे। नींद हमें तब भी आ जाती थी, जब हम गुलाम थे। शादी–ब्याह–रिश्तेदारी तब भी हो जाती थी, जब हम गुलाम थे। लेकिन हमारे पुरखों को यह गुलामी मंजूर नहीं थी। हमारे देश की आजादी के लिए लाखों लोगों ने अपनी कुर्बानी दी। अपना सर्वस्व न्यौछावर किया। लोगों ने अपनी पूरी जिंदगी खपा दी, अपना सब कुछ त्याग कर दिया। इस देश को आजादी इसी त्याग, तपस्या और बलिदान के दम पर मिली है।

लेकिन आजादी के इतने सालों बाद आज भी मजदूरों की जिंदगी जानवरों से बदतर हो गई है, किसान का हाल और भी बेहाल हो गया है, छात्रों को अपनी डिग्रियां लेकर भटकना पड़ रहा है तो हमारे मन में प्रश्न पैदा होता है कि आखिर हमने आजादी के इतने सालों में क्या किया है ? आजादी के इतने सालों बाद भी आज अगर महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की बनी हुई है तो उससे मुक्ति का रास्ता क्या हो सकता है ? समाज के उन तमाम तबके जिनके श्रम से, जिनकी मेहनत से इस देश का निर्माण होता है, उनके हालात इतने खराब क्यों हैं ? खेत में अगर मजदूर –किसान काम ना करें तो अन्न पैदा नहीं हो सकता। देश की फैक्ट्रियों में अगर मजदूर अपना खून–पसीना ना बहायें तो आज विकास की जो चकाचौंध दुनिया है, वह अपने दम पर संसाधन पैदा नहीं कर सकती। लेकिन इन संसाधनों को पैदा करने वाले मजदूरों की जिंदगी इतनी मजबूर, इतनी मजलूम क्यों है?

मैं यह मानता हूँ कि भारत ने आजादी के बाद अपनी विकास–यात्रा के दौरान अपने कदम को आगे बढ़ाया है लेकिन उस विकास यात्रा के सकारात्मक पहलुओं के साथ–साथ आज नकारात्मक पहलुओं का भी एक बड़ा पहाड़ खड़ा हो गया है। आज पूरा देश खासतौर से युवा उन समस्याओं का समाधान चाहता है और उस समाधान की तलाश में इधर–उधर भटक रहा है। वह उन समस्याओं के समाधान के लिए चारों तरफ हाथ–पैर मार

रहा है। इतिहास के पन्नों को खंगाल रहा है और भविष्य की चुनौतियों को भी समझने की कोशिश कर रहा है।

ऐसे दौर में इन समस्याओं के समाधान की दावेदारी के रूप में कहा जा रहा है कि अगर भारत को हिन्दूराष्ट्र बना दिया जाए तो समस्त समस्याओं का समाधान हो जाएगा। लेकिन क्या हिन्दूराष्ट्रवाद जिसको हम नकारात्मक राष्ट्रवाद कहते हैं, भारत की बेरोजगारी की समस्या का समाधान कर सकता है ? क्या नकारात्मक राष्ट्रवाद भारत के छात्रों की समस्याओं का समाधान कर सकता है ? क्या नकारात्मक राष्ट्रवाद का रास्ता किसानों की समस्याओं का समाधान कर सकता है ? क्या नकारात्मक राष्ट्रवाद का रास्ता भारत के दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों की समस्याओं का, उनके अपमान का समाधान कर सकता है ? क्या भारत के अंदर नकारात्मक राष्ट्रवाद का रास्ता भारत को एक विकसित, समृद्ध और खुशहाल राष्ट्र बना सकता है ? नहीं बना सकता।

भारत को एक विकसित, समृद्ध और खुशहाल राष्ट्र बनाने के लिए सकारात्मक राष्ट्रवाद की जरूरत है। कई लोगों के मन में यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि राष्ट्रवाद तो राष्ट्रवाद होता है उसमें सकारात्मक और नकारात्मक क्या होता है ? इसको ठंडे दिमाग से समझना जरूरी है। एक इंसान–इंसान होता है लेकिन वह सकारात्मक भी सोचता है और नकारात्मक भी सोचता है। इसी प्रकार विचार भी होता है, जो कि सकारात्मक भी होता है और नकारात्मक भी होता है और ठीक इसी प्रकार कोई कार्य भी होता है, जो सकारात्मक भी होता है और नकारात्मक भी होता है। उस कार्य के आधार पर परिणाम अच्छे भी निकलते हैं और बुरे भी निकलते हैं। उसी तरह से राष्ट्रवाद भी होता है और इस राष्ट्रवाद की परिणति नकारात्मक भी होती है और सकारात्मक भी होती है।

भारत के बेटे–बेटियों को न तो सकारात्मक राष्ट्रवाद से कुछ लेना देना है और न ही नकारात्मक राष्ट्रवाद से। जब हम बीमार पड़ते हैं तो हमें उस रोग का इलाज चाहिए। वह इलाज अगर आयुर्वेद से होता है तो आयुर्वेद अच्छा है, अगर एलोपैथ से होता है तो एलोपैथ भी अच्छा है, अगर यूनानी दवा से होता है तो यूनानी दवा भी अच्छी है, अगर होम्योपैथिक दवा से होता है तो होम्योपैथिक दवा भी अच्छी है। हमें समाधान चाहिए, देश का युवा समाधान चाहता है।

नकारात्मक राष्ट्रवाद द्वारा एक समाधान देने की दावेदारी की जा रही है जिसमें यह दावा किया जा रहा है कि यदि भारत को हिन्दूराष्ट्र बना दिया जाए तो भारत की समस्त समस्याओं का समाधान हो सकता है। हिन्दूराष्ट्रवाद क्या है ? नकारात्मक राष्ट्रवाद क्या है ? दुनिया के अंदर दो अलग ऐतिहासिक परिस्थितियों में दो अलग–अलग तरह के राष्ट्रवाद पैदा हुए। नकारात्मक राष्ट्रवाद और सकारात्मक राष्ट्रवाद।

लोगों के मन में यह प्रश्न पैदा होगा कि नकारात्मक राष्ट्रवाद और सकारात्मक राष्ट्रवाद को कैसे पहचाने ? नकारात्मक राष्ट्रवाद दूसरों पर वर्चस्व के लिए काम करता है जबकि सकारात्मक राष्ट्रवाद न्याय और हक के लिए लड़ता है। नकारात्मक राष्ट्रवाद दूसरों को गुलाम बनाना चाहता है जबकि सकारात्मक राष्ट्रवाद आजादी के लिए संघर्ष करता है। नकारात्मक राष्ट्रवाद जब अपने देश के अंदर दूसरे लोगों, समाजों और समुदायों पर वर्चस्व कायम कर लेता है तो दूसरे राष्ट्र पर वर्चस्व कायम करना चाहता है और उस वर्चस्व की प्रक्रिया में ही दुनिया को दो बार विश्व युद्ध और जनसंहार का सामना करना पड़ा। सकारात्मक राष्ट्रवाद जैसा मैंने कहा– न्याय के लिए लड़ता है, हक के लिए लड़ता है, आजादी के लिए लड़ता है और दुनिया के अंदर मानवता और बंधुत्व के लिए लड़ता है। अगर आपको लगता है कि न्याय के लिए लोग संगठित हो रहे हैं तो समझिये कि सकारात्मक राष्ट्रवाद है। लोग अगर हिस्सेदारी के लिए संगठित हो रहे हैं तो समझिये कि सकारात्मक राष्ट्रवाद है। लोग अगर आजादी के लिए लड़ रहे हैं तो समझिये कि सकारात्मक राष्ट्रवाद है। लोग अगर मानवता, बंधुत्व और समानता के लिए लड़ रहे हैं तो समझिये कि सकारात्मक राष्ट्रवाद है। वही अगर लोग दूसरों के ऊपर वर्चस्व के लिए लड़ रहे हैं तो समझिये कि नकारात्मक राष्ट्रवाद है। अगर दूसरों को गुलाम बनाने के लिए, नीचा दिखाने के लिए लड़ रहे तो समझिये कि नकारात्मक राष्ट्रवाद है। अगर दूसरे देश को गुलाम बनाने के लिए, उस पर वर्चस्व कायम करने के लिए, लूट के लिए लड़ रहे हैं, इकट्ठा हो रहे हैं तो समझिये कि नकारात्मक राष्ट्रवाद है।

नकारात्मक राष्ट्रवाद भविष्य में समस्याओं का समाधान कर सकता है या नहीं ? इसको जानने के लिए इतिहास के पन्नों को खंगालना बहुत जरूरी है। जो नकारात्मक राष्ट्रवाद की परिकल्पना है, उसके अनुसार कोई भी राष्ट्र तभी मजबूत बन सकता है, आगे बढ़ सकता है और संगठित होकर अपनी

समस्याओं का समाधान कर सकता है जब उसके अंदर एक धर्म, एक भाषा और एक नस्ल हो। नकारात्मक राष्ट्रवाद कहता है दिमाग बंद कर लो और केवल दिल से काम लो। वह अंधविश्वास पर भरोसा करता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की तरफ से मैं आपसे कहना चाहता हूं दिल–दिमाग सब कुछ खोल लें, जितनी भी इंद्रियां हैं, उन्हें भी खोल लें फिर सोचें, समझें और विचार करें, उसके बाद यकीन करें।

दुनिया के अंदर नकारात्मक राष्ट्रवाद के जो प्रयोग हुए, उसके दो उदाहरण रखना चाहूंगा। पहला उदाहरण है– जर्मनी, जहां एक नस्ल, एक जाति और एक धर्म के आधार पर नकारात्मक राष्ट्रवाद का जो चित्र विकसित हुआ उसकी पराकाष्ठा हिटलर के नेतृत्व में सामने आई। उसका क्या परिणाम निकला ? पहला परिणाम– जर्मनी के अंदर लाखों–लाख लोगों का कत्लेआम हुआ। उसी देश के बेटे–बेटियों के लहू बहाए गए। दूसरा परिणाम– जर्मनी दो हिस्सों में विखंडित हो गया और तीसरा परिणाम– देश को शक्तिशाली बनाने की दावेदारी करने वाला नायक आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो गया। जब आप नकारात्मकता को अपने चरम पर पहुंचाते हैं तो समाज के अंदर भी नकारात्मकता फैलती है और आपके अंदर भी नकारात्मकता फैलती है। नकारात्मकता कभी विकास नहीं कर सकती है। इसने पहले भी विनाश किया है आज भी कर रही है और कल भी यह विनाश ही करेगी। जर्मनी का इतिहास हमें यही सिखाता है।

नकारात्मक राष्ट्रवाद का दूसरा उदाहरण भारत की आजादी की लड़ाई के बाद 1947 में देखने को मिलता है जहाँ द्विराष्ट्रवाद का सिद्धांत सामने आता है जिसमें यह माना गया कि दो अलग–अलग धर्मों के लोग मिलकर एक राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते। इसलिए अगर उनका भविष्य सुरक्षित रखना है तो दो अलग–अलग राष्ट्र बनाने ही पड़ेंगे। इस तरह इस देश का विभाजन हो गया। 15 अगस्त 1947 इस देश की आजादी का दिन है और 15 अगस्त 1947 इस देश के विखंडन का भी दिन है। इस देश को खंडित कर एक नया देश पाकिस्तान इस दावेदारी के साथ बनाया गया कि इस नए देश में सबकी तरक्की का रास्ता खुलेगा, सबको शिक्षा की गारंटी होगी, सबको रोजगार मिलेगा।

हम सब जानते हैं कि धर्म के आधार पर जिस पाकिस्तान का निर्माण हुआ, उसके तीन परिणाम निकले। पाकिस्तान के अंदर भी बड़े पैमाने पर

आतंकवाद के कारण हजारों–हजार लोग कत्लेआम के शिकार हुए। पाकिस्तान और बांग्लादेश के रूप में पाकिस्तान दो हिस्सों में खंडित हो गया, जबकी दोनों जगह एक ही धर्म के मानने वाले लोग रहते हैं। पाकिस्तान के तमाम राष्ट्र नायकों को हत्या और आत्महत्या से गुजरने के लिए मजबूर होना पड़ा।

धर्म के आधार पर बने राष्ट्र पाकिस्तान के सभी बेटे–बेटियों को शिक्षा की गारंटी नहीं मिली, सबको रोजगार की गारंटी नहीं मिली, महिलाओं को आजादी की गारंटी नहीं मिली, पाकिस्तान दुनिया का विकसित और संगठित राष्ट्र नहीं बन पाया और अंततः उसका विखंडन हो गया। वही हाल जर्मनी का भी हुआ वह भी खंडित हो गया। नकारात्मक राष्ट्रवाद की बुनियाद पर निर्मित जब पाकिस्तान संगठित नहीं रह पाया, जर्मनी संगठित नहीं रह पाया तब भारत संगठित कैसे रह पाएगा ?

धर्म के आधार पर, नस्ल के आधार पर, भाषा के आधार पर, राष्ट्र न कल एकत्रित रह पाए थे न आज रह पायेंगे। न कल वो संगठित रहकर तरक्की और विकास की ऊंचाइयों तक पहुंच सके थे न आज पहुंच सकते हैं। देश के वे तमाम नौजवान जो इस भ्रम में हैं कि एक धर्म के आधार पर राष्ट्र बनने से भारत की तरक्की का रास्ता खुलेगा, खुशहाली का रास्ता खुलेगा, रोजगार का रास्ता खुलेगा और भारत दुनिया का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बनेगा। मैं उन तमाम नौजवानों से यह अनुरोध करूँगा कि वे इन दोनों देशों, जर्मनी और पाकिस्तान के इतिहास को ठंडे दिमाग से देखें, परखें और समझें।

नकारात्मक राष्ट्रवाद के संवाहकों की दूसरी दावेदारी यह है कि वे भारत की सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण कर रहे हैं। इसको भी गहराई से परखने की जरूरत है। आज तमाम नौजवान इसी भ्रम में नकारात्मक राष्ट्रवाद के इस पूरे महाभियान में शामिल हो रहे हैं कि चलो देश का विकास नहीं होगा तो कम से कम हमारे धर्म का, हमारे समाज का, हमारी सभ्यता का, हमारी भारतीय संस्कृति का संरक्षण तो होगा। उन तमाम नौजवानों को इतिहास के पन्नों में झांकने की जरूरत है कि आखिर भारतीय सभ्यता और संस्कृति क्या है ?

सिन्धु घाटी की सभ्यता के अंदर जो संस्कृति और परम्परा थी वह भारतीय संस्कृति का हिस्सा है या नहीं ? वैदिक काल के अंदर जो हमारी सभ्यता, संस्कृति और परम्परा विकसित हुई, वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं ? जैन काल में जो सभ्यता और संस्कृति विकसित हुई, वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं ? बौद्ध

काल में जो सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ, वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं ? भारत के अंदर कबीर, नानक, जायसी, दादू, मीरा के भक्ति आंदोलन का जो पूरा अभियान चला वह भारत की सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं ? भारत के अंदर 1757 से लेकर 1947 तक दुनिया के सबसे लंबे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जो सभ्यता, संस्कृति और परम्परा विकसित हुई, वह भारत की सभ्यता और संस्कृति का हिस्सा है या नहीं ? हमारे इतिहास के पन्नों से अगर सभ्यता और संस्कृति के इन हिस्सों को निकाल देंगे तो फिर भारत की सभ्यता और संस्कृति का जो हिस्सा बचेगा उसके आधार पर न तो भारतीय इतिहास बन सकता है और न ही भारत का भविष्य बन सकता है।

आज यह कहा जा रहा है कि अगर तुम राष्ट्रवादी हो तो तुम्हें एक भाषा बोलनी पड़ेगी, एक धर्म को मानना पड़ेगा, एक संस्कृति को मानना पड़ेगा, एक विचारधारा को मानना पड़ेगा और अगर तुम्हारा विचार इससे अलग है तो तुम राष्ट्रद्रोही हो। हमारी परम्परा क्या रही है ? भारत का सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद हैं। भारत के अन्दर एक वेद की रचना नहीं हुई। भारत के अंदर ऋग्वेद भी पैदा हुआ, सामवेद भी पैदा हुआ, अथर्ववेद भी पैदा हुआ और यजुर्वेद भी पैदा हुआ। अगर भारत के अंदर सिर्फ एक तरह की चिन्तन प्रक्रिया की परम्परा होती तो चार वेद पैदा नहीं होते। भारत के अंदर सबसे प्राचीन नौ दर्शन हैं। भारत की संस्कृति और सभ्यता के नौ दर्शन अलग–अलग ऋषियों के द्वारा, अलग–अलग महर्षियों के द्वारा प्रतिपादित हुए। भारत के अंदर अगर चार्वाक दर्शन जैसा नास्तिक दर्शन है तो यहाँ वेदांत दर्शन जैसा आस्तिक दर्शन भी है। भारत के अंदर चार्वाक दर्शन भी पैदा होता है। भारत के अंदर जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वैशेषिक दर्शन, मीमांसा दर्शन और न्याय दर्शन भी पैदा होता है। इसके अलावा पुराणों की संख्या भी अठारह है। भारत में चार वेद, नौ दर्शन और अठारह पुराण क्या कहते हैं ? वे कहते हैं कि हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अंदर अपने–अपने ज्ञान, विवेक और व्यवहार के अनुसार अलग–अलग चिन्तन करने की, सोचने की, समझने की और उसके अनुसार लोगों से बात करने की, संवाद करने की आजादी थी। चार वेदों की परम्परा है भारतीय संस्कृति, अठारह पुराणों की परम्परा है भारतीय संस्कृति, नौ दर्शन की परम्परा है भारतीय संस्कृति।

यदि हम इतिहास के पन्नों को देखने की कोशिश करें तो कई लोग कहते हैं कि भारत कभी सोने की चिड़िया था। दुनिया को जीरो भारत ने दिया। यह तब की बात है जब हमें अलग–अलग तरह से सोचने–समझने और संवाद करने की आजादी थी। मनुस्मृति आने से पहले भारत का मंजर अलग था। मनुस्मृति के आधार पर ज्यों–ज्यों हम संकुचित होते गए, हमारी प्रतिभाएं भी कुंठित होती गई और प्रतिभाएं जब कुंठित होती गईं तो हमारी गुलामी का भी रास्ता खुलता गया और अंततः हमारे विकास का रास्ता बंद होता गया। इसलिए जब हम भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर चिन्तन करने की बात करते हैं तो मै सभी युवाओं से कहना चाहता हूं कि भारत की समग्र सभ्यता और संस्कृति के जो सकारात्मक पहलू है उसे संग्रहित कर के ही नए भारत का रास्ता बनेगा। भारत के अंदर जो नकारात्मक चिन्तन है, जो अंधविश्वास की परम्परा है उससे भारत कभी आगे नहीं बढ़ सकता।

हमें आध्यात्म भी चाहिए और विज्ञान भी। जहाँ व्यक्तित्व के विकास और सकारात्मक चिन्तन के विकास के लिए आध्यात्म चाहिए, वही इस देश के विकास के लिए विज्ञान और तकनीक की जरूरत है। अंधविश्वास और आडम्बरों के रास्ते पर चलकर न तो व्यक्ति का विकास हो सकता है और न ही राष्ट्र का विकास हो सकता है। न तो भारतीय सशक्त हो सकते हैं और ना ही भारत राष्ट्र सशक्त हो सकता है। इसलिए भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अगर आगे बढ़ाना है, तो हमें बुद्ध से लेकर विवेकानंद की परम्परा को और कबीर से लेकर भगत सिंह की परम्परा को पुनर्जीवित करना पड़ेगा। मैं जिम्मेदारी से कहना चाहता हूँ कि बुद्ध से लेकर विवेकानंद और कबीर से लेकर भगत सिंह तक की परम्परा, भारत की गौरवशाली परम्परा रही है। यह भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सर्वोच्च गुणों पर, बलिदान पर, त्याग पर, तपस्या पर आधारित परम्परा है।

कोई भी व्यक्ति, कोई भी समाज और कोई भी राष्ट्र अपने इतिहास के सकारात्मक पहलुओं को संयोजित करके ही आगे बढ़ सकता है। इतिहास ने हमें यही सिखाया है और भविष्य भी इसी पर टिका हुआ है। इसलिए नौजवानों आपसे कहना चाहता हूं कि देश को अगर आगे बढ़ना है तो हमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सकारात्मक पहलुओं को विकसित करना है और उसके नकारात्मक पहलुओं से बचते हुए आगे बढ़ना है।

आपके अंदर जो नकारात्मक सोच है, आपके अंदर जो दुर्गुण है, उससे आप को मुक्त होना पड़ेगा तभी आप आगे बढ़ पाएंगे। आपके अंदर की जो सकारात्मक ऊर्जा है उसे जब विकसित करेंगे तभी आप आगे बढ़ पाएंगे। अगर आप सिर्फ इसलिए नकारात्मक ऊर्जा को संजोये रखते हैं क्योंकि वह आपकी अपनी है और इसलिए आप उसे आगे बढ़ाएंगे तो इससे विनाश होगा। लेकिन अगर आप सकारात्मक ऊर्जा को ग्रहण करके उसे अपनाएंगे और उसे आगे बढ़ाएंगे तो विकास का रास्ता खुलेगा, समृद्धि का रास्ता खुलेगा, खुशहाली का रास्ता खुलेगा। इतिहास के पन्नों के नकारात्मक बिंदुओं को संयोजित करने का नाम है– नकारात्मक राष्ट्रवाद। इतिहास की उन तमाम परम्पराओं, विश्वासों और संस्कृति के सकारात्मक पहलुओं और अपने अंदर की सकारात्मक ऊर्जा को संयोजित करके आगे बढ़ने का नाम है– सकारात्मक राष्ट्रवाद।

नकारात्मक राष्ट्रवाद और हिन्दू राष्ट्रवाद के संवाहकों की तीसरी दावेदारी यह है कि वे सबसे बड़े देश भक्त हैं। उनकी इस दावेदारी को भी गहराई से समझने की जरूरत है। भारत के अंदर आजादी की लड़ाई के दौरान हिन्दूराष्ट्रवाद के चिंतक पैदा हो चुके थे, उनके संगठन भी बन चुके थे। मैं आपको बताना चाहता हूं कि इस देश की आजादी के लिए 1857 में लाखों लोगों ने अपनी कुर्बानी दी, वे हिन्दू राष्ट्रवाद के चिन्तन से प्रभावित लोग नहीं थी। इस देश के अंदर करतार सिंह सराभा हंसते–हंसते फांसी के फंदे पर अपनी जान न्यौछावर कर दिये, वे हिन्दू राष्ट्रवाद के चिन्तन से प्रभावित नहीं थे। भारत के अंदर मदन लाल धींगरा, भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, पंडित राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खां जैसे हजारों–हजार नौजवान हंसते–हंसते फांसी के फंदे को चूम लिया, वे सब हिन्दू राष्ट्रवादी चिन्तन से प्रभावित होकर अपनी शहादत नहीं दिए बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद, सकारात्मक राष्ट्रवाद के चिन्तन से प्रभावित होकर फांसी की सूली पर चढ़ गए।

आज भी हिन्दू राष्ट्रवाद के, नकारात्मक राष्ट्रवाद के पुरोधाओं को स्वतंत्रता संग्राम से एक नाम बताना मुश्किल हो जाता है। जब लोग देश की आजादी के लिए लड़ रहे थे, उनकी विचारधारा से एक भी ऐसा नौजवान क्यों नहीं पैदा हुआ जो देश के लिए अपनी कुर्बानी दे ? कुल मिलाकर जोड़–तोड़ करके सिर्फ एक नाम सामने आता है, वह नाम आता है– वीर सावरकर जी का। वीर सावरकर जी की दो जिंदगी थी। एक जिंदगी में उन्हें हिन्दू और

मुसलमान की एकता के आधार पर लड़ा गया 1857 का स्वतंत्रता संग्राम सबसे ज्यादा प्रभावित करता है लेकिन जेल के अंदर जब अंग्रेजों के द्वार उनके ऊपर दबाव पड़ता है तो अंग्रेजों से वे माफी मांगते हैं और बाहर आते हैं। इसके बाद 1857 के सकारात्मक राष्ट्रवाद की परम्परा के उलट हिन्दू राष्ट्रवाद और हिंदुत्व के प्रचारक बन जाते हैं। इस प्रकार भारत की स्वतंत्रता के लिए जो उनके अंदर आग थी वह बुझ जाती है और वे स्वतंत्रता संग्राम की मुख्य धारा से अलग हो जाते हैं। प्रश्न यह पैदा होता है कि आज जो लोग राष्ट्रवाद और देशभक्ति की दावेदारी कर रहे हैं ? वे उस विचारधारा के अंदर, इस देश की आजादी की लड़ाई के दौरान संघर्ष करने वाले नौजवानों की टीम तैयार क्यों नहीं कर पाए ? लंबे समय तक भारत के राष्ट्रध्वज को फहराने में उन्हें शर्म क्यों आती थी ?

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि इस देश के अंदर नकारात्मक राष्ट्रवाद वर्चस्व पैदा कर सकता है, कुछ लोगों को सत्ता के सिंहासन पर बैठा सकता है लेकिन इस देश की सभ्यता और संस्कृति को नहीं बचा सकता है। नकारात्मक राष्ट्रवाद इस देश के अंदर, मां भारती के लिए मर–मिटने की परम्परा, त्याग, तपस्या और बलिदान की भावना नहीं पैदा कर सकता है और देश को एकत्रित करके शक्तिशाली नहीं बना सकता है। नकारात्मक राष्ट्रवाद के पास यह क्षमता ही नहीं है। यह बात किसी व्यक्ति के विरोध की नहीं है। यह बात उस विचारधारा की है जिसके पास अंततोगत्वा समाधान ही नहीं है। इतिहास के पन्नों में जो विचारधारा समाधान नहीं निकाल पाई। वर्तमान में सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने के बाद भी जो विचारधारा समाधान नहीं निकाल पा रही है, वह विचारधारा कल समाधान निकाल लेगी इस पर हमें संशय है।

यह विचारधारा समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती इसलिए सत्ता में आने के लिए उसे नफरत फैलानी पड़ती है, दंगे करवाने पड़ते हैं, लोगों को एक–दूसरे से लड़वाना पड़ता है और जब लड़ाई होती है, संघर्ष होता है, दंगे होते हैं, नफरत फैलती है तब समस्या और बढ़ जाती है। समस्या जब बढ़ेगी तो और दंगे होंगे और नफरत फैलायी जायेगी। नफरत और दंगे का सिलसिला एक ऐसा चक्रव्यूह है जिससे बाहर निकलने का रास्ता अगर आज भारत के बेटे–बेटियों ने नहीं सोचा तो वह दिन दूर नहीं जब हम एक ऐसी

अंधी गली में फंस जायेंगे जहाँ से बाहर निकलने का कोई रास्ता, हमारे–आपके किसी के पास नहीं होगा।

अगर नकारात्मक राष्ट्रवाद के पास इसका समाधान नहीं है तो यह भी जानना जरूरी है कि सकारात्मक राष्ट्रवाद इसका समाधान कैसे कर सकता है क्योंकि विरोध के लिए विरोध करने से समाधान नहीं पैदा होता। समाधान के लिए नए चिन्तन की जरूरत है, नए आधार की जरूरत है, नयी पहल की जरूरत है।

जैसा कि मैंने पहले कहा कि नकारात्मक राष्ट्रवाद नफरत की बुनियाद पर खड़ा होता है और सकारात्मक राष्ट्रवाद मोहब्बत की बुनियाद पर खड़ा होता है। नकारात्मक राष्ट्रवाद का पहला पहलू तोड़ना होता है। दिलों को तोड़ कर देश पर राज करने का फॉर्मूला है– नकारात्मक राष्ट्रवाद। दिलों को जोड़ कर देश में एक ऐसी सत्ता का निर्माण करना जिससे समाधान पैदा हो उसका नाम है– सकारात्मक राष्ट्रवाद।

सकारात्मक राष्ट्रवाद क्या कहता है ? सकारात्मक राष्ट्रवाद कहता है कि अगर देश को मजबूत बनाना है तो देश के अंदर रहने वाले सभी धर्म के लोगों को, सभी जाति के लोगों को, सभी भाषा के लोगों को, सभी क्षेत्र के लोगों को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, सभी की ऊर्जा को एक सूत्र में जोड़ना होगा। जब इस देश के समग्र मानवीय ऊर्जा को, प्राकृतिक ऊर्जा को, सांस्कृतिक ऊर्जा को जोड़ा जाएगा तब उससे जो ऊर्जा पैदा होगी। उस ऊर्जा का अंदाजा लगाना के लिए हमें आजादी की लड़ाई के पन्नों को देखना होगा।

यह देश अलग–अलग नवाबों, अलग–अलग राजाओं में बंटा हुआ था। ईस्ट इंडिया कंपनी के राज के सौ साल पूरे होने पर अट्ठारह सौ सत्तावन की जंगे आजादी में लोगों ने इस देश के अंदर एकता की शुरूआत की। हमारे पुरखों ने इस देश में अंग्रेजों के खिलाफ जो लड़ाई लड़ी, उसका महामंत्र था– सकारात्मक राष्ट्रवाद। 1857 की पहली जंग–ए–आजादी में अंग्रेजों से लड़ने के लिए देश इकट्ठा होना शुरू होता है। नवाब भी इकट्ठे होते हैं, राजा भी इकट्ठे होते हैं, सैनिक भी इकट्ठे होते हैं, किसान भी इकट्ठे होते हैं और नौजवान भी इकट्ठे होते हैं।

सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा और उसके चिन्तन की यह ताकत है कि जब वह बहादुर शाह जफर के दिल में पैदा होती है तो वह उन्हें बुढ़ापे में

भी देश के लिए मर–मिटने की एक तमन्ना पैदा कर देती है, उत्साह पैदा कर देती है, हिम्मत पैदा कर देती है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा एक तरफ बहादुर शाह जफर को लड़ने के लिए प्रेरित करती है तो दूसरी तरफ नाना साहब के दिल में भी वहीं तरंग पैदा करती है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा वह ऊर्जा है जो एक तरफ झांसी की रानी के दिल में तरंग पैदा करती है तो दूसरी तरफ बेगम हजरत महल के दिल में भी वही तरंग पैदा करती है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की जो ऊर्जा अजीमुल्ला खान के दिल में पैदा होती है वही ऊर्जा तात्या टोपे के दिल में भी पैदा होती है।

सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा वह ऊर्जा है जो राम प्रसाद बिस्मिल को फांसी के फंदे पर हंसते–हंसते झूलने के लिए प्रेरित कर देती है। सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा वह ऊर्जा है जो असफाक उल्ला खान को देश के लिए मर मिटने को प्रेरित कर देती है। पं. राम प्रसाद बिस्मिल गीता को पढ़ते हैं, हिन्दूधर्म को मानते हैं, आर्य समाज को मानते हैं लेकिन देश के लिए, कुर्बानी देने के लिए खड़े हो जाते हैं। असफाक उल्ला खान इस्लाम को मानते हैं, कुरान पढ़ते हैं लेकिन देश के लिए, मादरे वतन की आजादी के लिए कुर्बान होने के लिए तैयार हो जाते हैं।

सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा वह ऊर्जा है जो भगत सिंह को भी प्रेरित करती है, चन्द्रशेखर आजाद को भी प्रेरित करती है। अगर बंगाल में पैदा हुए बटुकेश्वर दत्त को प्रेरित करती है तो पंजाब में पैदा हुए करतार सिंह सराभा को भी प्रेरित करती है। इस देश के बेटे–बेटियों में, चाहे वह किसी भी जाति के हो, किसी भी धर्म के हों, किसी भी क्षेत्र के हों, किसी भी लिंग के हों, किसी भी भाषा के हों जिस दिन सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा पैदा होती है वे भाषा, क्षेत्र, लिंग, प्रांत, जाति, धर्म समस्त ऊर्जा से ऊपर उठकर वे अपने देश को, अपने राष्ट्र को तरंगित करने लगते हैं। इसी ऊर्जा के दम पर हमारे पुरखों ने आजादी की लड़ाई लड़ी और यह देश आजाद हुआ। सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा लोगों को जोड़ती है और इतना तो हर इंसान को समझ में आता है कि जोड़ने से ताकत बढ़ती है और तोड़ने से ताकत कमजोर होती है। अगर इस देश को आगे बढ़ाना है तो इस देश की समग्र ऊर्जा को संगठित करना, उन्हें आपस में जोड़ना जरूरी है।

इस देश के सभी बेटे–बेटियों में कोई ना कोई सकारात्मक ऊर्जा है, उस ऊर्जा को एक माले के रूप में पिरोने की जरूरत है और उस माले के

अलग–अलग मोतियों की ऊर्जा को जोड़कर एक सूत्र में बांधने वाले धागे का नाम है– सकारात्मक राष्ट्रवाद। सकारात्मक राष्ट्रवाद की ऊर्जा में सबकी सहभागिता सुनिश्चित है क्योंकि हमारे समाज के अंदर समानता का मतलब एकरूपता नहीं है। सकारात्मक राष्ट्रवाद के चिन्तन में यदि आपको लोगों को जोड़ना है तो लोगों की हिस्सेदारी और उनके न्याय को सुनिश्चित करना पड़ेगा। जब आप माला पिरोते हो तो धागे में प्रत्येक मनके को उचित स्थान देना पड़ता है। न्याय और हिस्सेदारी को सुनिश्चित किए बगैर यदि माला बनाई जाए तो वह अव्यवास्थित और बदसूरत होगी।

सकारात्मक राष्ट्रवाद का चिन्तन इस बात को मानता है कि अगर इस देश की समस्त ऊर्जा को इकट्ठा किया जाए तो नया चिन्तन पैदा होगा। नए चिन्तन से नया ज्ञान और नए ज्ञान से नया विज्ञान पैदा होगा। नए विज्ञान से नई टेक्नोलॉजी पैदा होगी और हम टेक्नोलॉजी के स्तर पर, प्रौद्योगिकी के स्तर पर और ज्ञान–विज्ञान के स्तर पर दुनिया का मुकाबला कर पाएंगे। आगे बढ़ पायेंगे और इस देश की वर्तमान समस्याओं के समाधान का रास्ता निकाल पायेंगे।

मैं बार–बार कहता हूं कि भारत में किसी चीज की कमी नहीं है। भारत के पास जितनी उपजाऊ जमीनें हैं, दुनिया के कम देशों के पास है। भारत के पास जितनी प्राकृतिक संपदा है, खनिज पदार्थ है, दुनिया के कम देशों के पास है। भारत में जितनी नदियाँ बहती हैं, दुनिया के बहुत कम देशों में बहती है। भारत के पास जितनी श्रम शक्ति है, दुनियां के कम देशों के पास है। भारत के पास जितनी बौद्धिक और मानसिक क्षमता है, दुनिया के कम देशों के पास है। भारत के लोगों को कुदरत ने सब कुछ दिया है। भारत में कुदरत से मिले मानवीय संसाधनों और प्राकृतिक संसाधनों को एक सूत्र में पिरो कर एक नई दिशा में लगा दिया जाए तो उस ऊर्जा से हम नए कारोबार का, नए उद्योगों का और विकास के नए तंत्र का निर्माण कर सकते हैं।

सकारात्मक राष्ट्रवाद के चिन्तन के दो मुख्य पहलू हैं। पहला– लोगों में एकता और मोहब्बत और दूसरा– देश के निर्माण में सभी लोगों की हिस्सेदारी। जब मैं देश के निर्माण में लोगों की हिस्सेदारी की बात करता हूं तो इस देश के अंदर सकारात्मक राष्ट्रवाद के चिन्तन के आधार पर विकास के एक ऐसे ताने–बाने के निर्माण की बात करता हूँ जिसमें देश के सभी लोगों की

हिस्सेदारी सुनिश्चित हो। इसी हिस्सेदारी को हम 'रोजगार' कहते हैं। अगर किसी भी देश के आधे से ज्यादा लोग बेरोजगार पड़े हैं, उनकी ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं हो रहा है तो इसका सीधा सा मतलब है कि देश के निर्माण में उनका कोई योगदान नहीं हो रहा है। जब आबादी के एक बड़े हिस्से की देश के निर्माण में कोई हिस्सेदारी नहीं है तो देश आगे कैसे बढ़ सकता है? आज भी गांव में मनरेगा से केवल 3 महीने काम मिलता है और 9 महीने हमारे राष्ट्र की उस ऊर्जा का उपयोग नही हो पाता है। इस देश के अंदर आधी आबादी महिलाओं की है लेकिन उनकी देश के निर्माण में कोई हिस्सेदारी नहीं है। उनके लिए कोई रोजगार नहीं है।आज इस देश के अंदर करोड़ों की तादात में यूनिवर्सिटी–कॉलेज से नौजवानों की एक पूरी भीड़ निकल कर बेरोजगार घूम रही है। वे बेरोजगार हैं बात इतनी नहीं है। उनके पास आर्थिक अधिकार नहीं है, हमारे विकास के तंत्र में उनकी ऊर्जा की कोई हिस्सेदारी नहीं है। देश के निर्माण में जो उनकी हिस्सेदारी होनी चाहिए उससे उनको वंचित किया जा रहा है।

आज जो हम नकलची बंदर की तरह पूरी दुनिया के अंदर घूम रहे हैं और सोचते हैं कि शायद हम जापान की टेक्नोलॉजी को अपनाकर भारत का विकास कर लेंगे। कोई नई सरकार आती है तो वह सोचती है कि अमेरिका की टेक्नोलॉजी अपनाकर हम भारत का विकास कर लेंगे। यह पूरी तरह गलत है। दुनिया के अंदर जो टेक्नोलॉजी विकसित हुई है, उसके महत्वपूर्ण और उपयोगी पहलुओं को अपनाना जरूरी है। अगर हम भारत की विकास यात्रा को आगे बढ़ाना चाहते हैं तो हमें भारत के प्राकृतिक संसाधनों के अनुरूप, भारत के मानसून के अनुरूप तथा हमारी क्षेत्रीय विषमताओं के अनुरूप, भारत के बेटे–बेटियों के श्रम और ज्ञान–विज्ञान का उपयोग करके क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों के अनुसार टेक्नोलॉजी का विकास करना पड़ेगा। जैसे– छत्तीसगढ़ में वहां के जंगलों के उत्पादों के अनुरूप, औद्योगिक विकास के लिए टेक्नोलॉजी को विकसित करना पड़ेगा। इसी प्रकार पहाड़ी, मैदानी और पठारी क्षेत्रों के लिए भी अलग–अलग टेक्नोलॉजी विकसित करनी पड़ेगी। इससे भारत के बेटे–बेटियां अपने गांव, कस्बे और क्षेत्र में ही रोजगार पाकर देश के निर्माण में अपना योगदान दे सकते हैं। सबको रोजगार और सम्मान मिल सकता है। यकीन मानिए यह आर्थिक हिस्सेदारी, सामाजिक न्याय की गारंटी की तरफ एक मजबूत कदम साबित हो सकती है। इस तरह

सकारात्मक राष्ट्रवाद के दोनों प्रमुख पहलूओं– 'आपसी मोहब्बत' और 'सबकी हिस्सेदारी' सुनिश्चित की जा सकती है जिससे देश के सभी लोगों को काम और सम्मान मिल सके साथ ही देश के निर्माण में सबका योगदान शामिल हो सके।

इस प्रकार जिसने पढ़ाई नहीं की वह भी देश के निर्माण में योगदान कर सकता है। जो आठवीं फेल है, वह भी योगदान कर सकता है। जो दसवीं पास है, वह भी योगदान कर सकता है और जो ग्रेजुएट हो गया, वह भी योगदान कर सकता है। जो डॉक्टर, इंजीनियर और टीचर बन गया है, वह भी योगदान कर सकता है। जो आईएएस और आईपीएस बन गया है, वह भी योगदान कर सकता है। जो प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री और मंत्री बन गया, वह भी योगदान कर सकता है। इस देश के अंदर भारत का कोई भी बेटा–बेटी, चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित हो हम उसके रोजगार की गारंटी कर सकते हैं। इस तरह एक ऐसे तंत्र को विकसित किया जा सकता है जिससे देश के निर्माण में समग्र मानवीय संसाधन की हिस्सेदारी सुनिश्चित की जा सकती है।

आपमें से कई लोगों के मन में यह प्रश्न पैदा हो रहा होगा कि इतने लोगों को रोजगार देने के लिए पैसा कहां से आएगा ? इस देश में पैसे की कमी नहीं है। भारत में 100 लोगों के पास इतना पैसा है जितना 100 करोड़ लोगों के पास नहीं है। हमें एक ऐसी व्यवस्था को निर्मित करने की जरुरत है जिससे देश के संसाधनों का न्यायपूर्ण बंटवारा हो सके। हमारा मानना है कि सकारात्मक राष्ट्रवाद के चिन्तन से सकारात्मक व्यक्ति पैदा होगा, सकारात्मक व्यक्ति के चिन्तन से सकारात्मक समाज पैदा होगा और इसी सकारात्मक समाज से सकारात्मक राष्ट्र पैदा होगा। मैं जिम्मेदारी से कहना चाहता हूं, सकारात्मक राष्ट्रवाद का चिन्तन इस देश के लोगों को मोहब्बत के आधार पर जोड़ भी सकता है और सभी लोगों को उनके श्रम, विवेक, प्रतिभा और मान–सम्मान के साथ इस देश के निर्माण में योगदान करने का अवसर भी दे सकता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद का यह चिन्तन भारत को एक खुशहाल देश बना सकता है साथ ही सभी भारतीयों को एक खुशहाल नागरिक भी बना सकता है और यकीन मानिए खुशहाल व्यक्ति और खुशहाल राष्ट्र ही दुनिया की खुशहाली की कामना कर सकता है।

हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का जो सपना है 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यंतु मां कश्चित् दुख भाग भवेत', 'वसुधैव

कुटुंबकम' का जो सपना है, जिसे किसी सकारात्मक पलों में भारत के महर्षियों ने देखा था, उसका रास्ता सकारात्मक राष्ट्रवाद द्वारा खुल सकता है। सकारात्मक राष्ट्रवाद व्यक्ति को भी जोड़ने का काम करता है, समाज को भी जोड़ने का काम करता है और दुनिया के अंदर ऐसे राष्ट्र जो एक–दूसरे को खत्म करने की फिराक में बैठे हैं उनको भी जोड़ने का काम करता है। इस सकारात्मक चिन्तन से, व्यक्ति से लेकर व्यवस्था तक, राष्ट्र से लेकर मानवता तक सबको एक सूत्र में बांधकर, विश्व के अंदर एक नए चिन्तन और नए इंसानी व्यवस्था के निर्माण के लिए आगे बढ़ा जा सकता है।

सकारात्मक राष्ट्रवाद कहता है कि देश के अंदर सभी जाति, धर्म, मजहब के लोगों के लिए बराबर जगह है साथ ही अन्य देशों के साथ भी मोहब्बत के आधार पर जुड़ा जा सकता है। सभी लोग अपने अस्तित्व के साथ सह–अस्तित्व में जी सकते हैं। एक–दूसरे के सहयोग, मोहब्बत और खुशी की बात कर तरक्की के शिखर तक पहुंचा जा सकता है। जब जोड़ने की प्रक्रिया शुरू होगी तो आत्महत्या करने की जरूरत नहीं पड़ेगी, कत्लेआम की जरूरत नहीं पड़ेगी और विखंडित होने की जरूरत नहीं पड़ेगी। सकारात्मक राष्ट्रवाद व्यक्ति, समाज, देश और दुनिया के अंदर के बिखराव को खत्म करके सबको एक सूत्र में जोड़ सकता है। सब की खुशहाली की तमन्ना के रास्ते का नाम है– सकारात्मक राष्ट्रवाद।

नकारात्मक राष्ट्रवाद सालों से देश के लोगों के मानस में अपनी जड़ें जमा रहा है। इससे यह प्रश्न उठता है कि जिस प्रकार नकारात्मक राष्ट्रवाद के विचार के प्रसार में कई वर्षों का समय लगा है तो क्या उसी प्रकार सकारात्मक राष्ट्रवाद के विचार के प्रसार में भी कई सालों का समय लगेगा? उत्तर है समय नहीं लगेगा। चूँकि संकट के समय में ही समाधान पैदा होता है और संकट जितना ही तीव्र होता है, समाधान भी उतना ही तात्कालिक और उतनी ही तेजी से होता है। आज जिस तरह की बेचैनी समस्त भारत भर के युवा महसूस कर रहे हैं। चाहे कश्मीर का युवा हो या कन्याकुमारी का युवा, कच्छ का युवा हो या कोहिमा का युवा, वे सब एक बेचैनी लिए हुए हैं कि देश अगर इसी तरह आगे बढ़ा तो देश का भविष्य क्या होगा? इस चिंता और बेचैनी का समाधान है– 'सकारात्मक राष्ट्रवाद', जो कि एक समावेशी और समतामूलक राष्ट्र के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करता है।

इस विचार के प्रसार और प्रचार के लिए देश के युवाओं को इस बात की गारंटी करनी पड़ेगी कि क्या वे इस वैचारिक आन्दोलन को आगे बढाने के लिए दृढ़संकल्पित और समर्पित हैं ? कहना आसान है एक बार सोचने की कोशिश कीजिए। आज यदि हमारे पाँव में एक काँटा चुभता है तो मुंह से आह निकल पड़ती है। पर इसी मां भारती की मिट्टी की उस ऊर्जा को महसूस करने की कोशिश कीजिये जब देश की आजादी के नायक भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव फांसी के फंदे को चूमने जा रहे थे, उन्हें पता था की कुछ ही पल में फांसी का फंदा उनके गर्दन में होगा पर वे मुस्कुरा रहे थे। हमसे एक कांटा बर्दाश्त नहीं होता और वे अपनी शहीदी पर भी मुस्कुरा रहे थे। वे इसी मिट्टी के बेटे थे। झांसी की रानी, बेगम हजरत महल इसी मिट्टी की बेटियां थीं। अगर इस देश के लिए सचमुच कुछ करना चाहते हैं तो सबसे पहले अपने अंदर की ऊर्जा को जगाइए। सकारात्मक राष्ट्रवाद की मंजिल पर पहुंचने की पहली शर्त है – अपने अंदर की सकारात्मक ऊर्जा को जागृत करना।

मैं देश के तमाम बेटे–बेटियों से कहना चाहता हूं कि रोजाना घुट–घुट कर जीने–मरने से बेहतर है मां भारती के लिए अपनी ऊर्जा को जागृत करना। मरना है तो कुछ करके मरो, जीना है तो कुछ करके जीओ। इस तरह घुट–घुट के जीने–मरने से ना आपका कोई विकास होने वाला है ना ही इस देश का विकास हो सकता है। आपके सामने जीने के दोनों रास्ते हैं, तय आपको करना है।

यह सही है कि देश के युवाओं को अपनी जिंदगी भी बेहतर करनी है और परिवार की जिम्मेदारियों को भी निभाना है। साथ ही यदि एक बेहतर राष्ट्र बनाना है तो नये राष्ट्र के निर्माण के लिए भी अपना समय देना होगा। एक इंसान के अंदर इतनी ऊर्जा संचित होती है कि जो संकल्प वह लेता है, उसी के अनुपात में उसके अंदर ऊर्जा भी निर्मित होती है। मैं जिम्मेदारी से कहना चाहता हूं इस देश के अंदर सकारात्मक राष्ट्रवाद के चिन्तन को, इस वैचारिक आंदोलन को अगर हम भारत के बेटे–बेटियों के मानस तक पहुंचाने में सफल होते हैं तो यकीन मानिए एक ऐसी सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह होगा जिससे हमारे हिंदुस्तान का निर्माण होगा और बेहतर इंसान का भी निर्माण होगा।

नए राष्ट्र के निर्माण के लिए व्यक्ति और व्यवस्था दोनों को बदलना जरूरी है। व्यवस्थाओं का संचालन व्यक्ति करता है और व्यक्ति की सोच व्यवस्थाओं को प्रभावित करती है। इसलिए 'देश की बात फाउंडेशन' को लगता है कि हमें व्यक्ति को भी बदलना है और व्यवस्था को भी बदलना है। हमें नए इंसान का भी निर्माण करना है और नए हिंदुस्तान का भी निर्माण करना है। सकारात्मक राष्ट्रवाद के विचार के संवाहक बनने के लिए हम भारत के बेटे–बेटियों को तैयार होना पड़ेगा और मुझे यकीन है कि यह रास्ता इस देश को एक नई रोशनी दिखाएगा, इस दुनिया को एक नई रोशनी दिखाएगा। यह हमारे आजादी के लाखों शहीदों को, जिन्होंने देश की आजादी के लिए हंसते–हंसते अपनी कुर्बानी दी, के सपनों को भी साकार करेगा।

इन्कलाब जिंदाबाद।।।

गोपाल राय

(संस्थापक: देश की बात फाउंडेशन)

इस पुस्तक से संबंधित आपके सुझाव उपेक्षित रहेंगे

Website- DeshKiBaatFoundation.com

Facebook - @deshkibaatfdn

Twitter - @deshkibaatfdn

Email- Contact@deshkibaatfoundation.com

YouTube - https://youtube.complaylist?list=PLKYuMbn0Hwf2 LvSOD5FC68kx-Juj4LfNI

Contact number: +918800589339